दादा भगवान प्ररूपित

गुरु शिष्य



गुरु का मतलब जो हमे मार्ग दिखाए, गाइड की तरह।

दादा भगवान कथित

गुरु-शिष्य

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन
हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100

प्रथम संस्करण : 3,000 प्रतियाँ, जून, 2012
नई रीप्रिन्ट : 800, प्रतियाँ, जून, 2021

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 50 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
B-99, इलेक्ट्रॉनिक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2142

ISBN/eISBN : 978-93-86289-52-0

Printed in India

त्रिमंत्र





नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो ऊवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद





'दादा भगवान' कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसी के पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो 'ए.एम.पटेल' हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।



आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करने वाला हूँ। बाद में अनुगामी चाहिए या नहीं चाहिए? बाद में लोगों को मार्ग तो चाहिए न?'

- दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आप श्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरू बहन अमीन (नीरू माँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरू माँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरू माँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेश में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरू माँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त करके ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

संपादकीय

लौकिक जगत् में बाप-बेटा, माँ-बेटा या बेटी, पति-पत्नी वगैरह संबंध होते हैं। उनमें गुरु-शिष्य भी एक नाजुक संबंध है। गुरु को समर्पित होने के बाद पूरी ज़िंदगी उनके प्रति ही वफादार रहकर परम विनय तक पहुँचकर, गुरु आज्ञा के अनुसार साधना करके सिद्धि प्राप्त करनी होती है। वहाँ सच्चे गुरु के लक्षण, वैसे ही सच्चे शिष्य के लक्षण कैसे होते हैं, उसका सुंदर विवेचन यहाँ पर प्रस्तुत हो रहा है।

जगत् में विविध मान्यताएँ गुरु के लिए प्रवर्तमान हैं और तब ऐसे काल में यथार्थ गुरु बनाने के लिए लोग उलझन में पड़ जाते हैं। यहाँ पर वैसी उलझनों की प्रश्नकर्ता द्वारा 'ज्ञानी पुरुष' से पृच्छा हुई हैं और समाधानी स्पष्टीकरण रूपी उत्तरों की प्राप्ति हुई है।

'ज्ञानी पुरुष' मतलब जगत् के व्यवहार स्वरूप की, वैसे ही, वास्तविक विज्ञान स्वरूप की ओब्ज़र्वेटरी! ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' के श्रीमुख से - गुरुपद अर्थात् क्या? गुरु की अध्यात्म में ज़रूरत है क्या? ज़रूरत है तो कितनी? गुरु के लक्षण क्या-क्या होने चाहिए? गुरुत्तम या लघुत्तम? *गुरुकिल्ली* सहित हैं? लोभ, लालच या मोह में गुरु फँसे हुए हैं? लक्ष्मी, विषय या शिष्यों की भीख अभी भी है उनमें? गुरु की पसंदगी किस प्रकार की जाए? गुरु किसे बनाएँ? कितने बनाएँ? एक बनाने के बाद फिर दूसरे को बना सकते हैं? गुरु नालायक निकलें तो क्या करें? इस प्रकार गुरुपद के जोखिमों से लेकर, शिष्यपद अर्थात् क्या, शिष्य कैसे होने चाहिए, और शिष्यपद की सूक्ष्म जागृति तक की तमाम समझ तथा गुरु के किस प्रकार के व्यवहार से खुद का और शिष्य का हित होता है, और शिष्य को खुद के हित के लिए कौन-सी दृष्टिपूर्वक गुरु के पास रहना चाहिए और शिष्य को गुरुपद कहाँ स्थापन करना चाहिए कि जिससे उसे ज्ञान की प्राप्ति होकर परिणमित हो, और गुरु में कौन-

कौन से रोग नहीं होने चाहिए, ताकि वैसे गुरु उनके शिष्य का हित करने के लिए समर्थ बने। एकलव्य जैसी गुरुभक्ति कलियुग में कहाँ से मिले? ज्ञानी पुरुष ने गुरु बनाए हैं या नहीं? उन्होंने शिष्य बनाए हैं या नहीं? खुद कौन-से पद में बरतते हैं, वगैरह-वगैरह तमाम प्रश्नों के संपूर्ण समाधान देने वाले प्रत्युत्तर संपूज्य दादाश्री के श्रीमुख से बही हुई वाणी द्वारा मिलते हैं!

सामान्य समझ में गुरु, सद्गुरु और ज्ञानी पुरुष तीनों को एक-दूसरे के साथ मिला दिया जाता है। जबकि यहाँ पर इन तीनों के बीच का एक्ज़ेक्ट स्पष्टीकरण मिलता है।

अध्यात्म का मार्ग मार्गदर्शक के बिना कैसे कटेगा? वह मार्गदर्शक अर्थात् कि गाइड यानी...

मोक्ष मार्गस्य नेत्तारं भेत्तारं सर्व कर्माणाम्
ज्ञातारम् सर्व तत्वानाम् तस्मै श्री सद्गुरु नमः

(मोक्षमार्ग के नेता, सर्व कर्मों के भय को दूर करने वाले,
सर्व तत्वों को जानने वाले, ऐसे श्री सद्गुरु को नमस्कार)

इतने से ही मोक्ष मार्ग के नेता, गुरु कैसे होने चाहिए? वह समझ में आता है।

गुरु और शिष्य दोनों कल्याण के मार्ग पर प्रयाण कर सके, उसके लिए तमाम दृष्टिकोणों से गुरु-शिष्य के अन्योन्य संबंधों की समझ, लघुत्तम फिर भी अभेद, ऐसे गज़ब के पद में बरतने वाले 'ज्ञानी पुरुष' की वाणी द्वारा प्रकाशमान हुई, वह यहाँ पर संकलित हुई है, जो मोक्षमार्ग पर चलने वाले पथिक के लिए मार्गदर्शक (गुरु) बन पड़ेगी।

डॉ. नीरू बहन अमीन

अनुक्रमणिका



गुरु-शिष्य

गुरु अर्थात् गाइड

प्रश्नकर्ता : मैं बहुत जगह पर घूमा हूँ और सब जगह मैंने प्रश्न पूछे कि गुरु अर्थात् क्या? लेकिन मुझे कोई संतोषजनक जवाब नहीं मिला।

दादाश्री : हमें यहाँ से स्टेशन जाना हो ओर रास्ते में चलते-चलते उलझ जाएँ और रास्ता नहीं मिले, रास्ता भूल गए हों तो किसी से पूछने की ज़रूरत है? किसकी ज़रूरत पड़ेगी?

प्रश्नकर्ता : जानकार की।

दादाश्री : वह जानकार अर्थात् गुरु! जब तक रास्ता नहीं मालूम हो तब तक रास्ते में किसी को पूछने की ज़रूरत पड़ती है। किसी छोटे बच्चे से भी पूछना पड़ सकता है। जिस-जिससे पूछना पड़े, वे गुरु कहलाते हैं। गुरु हों, तभी रास्ता मिलता है। ये आँखें नहीं हों तो क्या होगा? गुरु, वह दूसरी आँख है! गुरु मतलब जो हमें आगे की सूझ दें।

गुरु की ग़रज़ किसे?

प्रश्नकर्ता : आपका ऐसा कहना है कि गुरु ज़रूरी हैं?

दादाश्री : ऐसा है न, जो रास्ता खुद भूला है, और वह रास्ता खुद को पता नहीं चले, स्टेशन का रास्ता नहीं जानते हों, तब तक मुश्किल पड़ती है। लेकिन रास्ते का जानकार मिल गया तो हम तुरंत स्टेशन पर पहुँच जाएँगे न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : यानी जानकार की ज़रूरत है। रास्ता दिखाने वाले ऐसा नहीं कहते कि आप हमें रास्ता पूछो! अपनी ग़रज़ से पूछते हैं न? किसकी ग़रज़ से पूछते हैं?

प्रश्नकर्ता : अपनी ग़रज़ से।

दादाश्री : नहीं तो पूछे बिना चलो न, पूछो नहीं और वैसे ही चलो न, कोई अनुभव करके देखना न! वह अनुभव आपको सिखाएगा कि गुरु बनाने की ज़रूरत है। मुझे सिखाना नहीं पड़ेगा।

इसलिए रास्ता है, लेकिन उसे दिखाने वाले नहीं हैं न! दिखाने वाले हों तो काम चलेगा न!

गुरु मतलब कोई दिखाने वाला जानकार चाहिए या नहीं? जो गुरु हैं, उनके हम फॉलोअर्स कहलाते हैं। वे आगे चलते हैं और हमें आगे का रास्ता दिखाते जाते हैं, वे जानकार कहलाते हैं।

एक व्यक्ति सूरत के स्टेशन पर जाने के लिए इस तरफ मुड़ गया। यहाँ से इस रास्ते पर निकला और वह रोड आई, और तुरंत इस दिशा के बदले उस दिशा में चला जाए, फिर वह सूरत ढूँढने जाए तो मिलेगा क्या? घूमता रहे तो भी नहीं मिलेगा। रात पड़े, दिन हो जाए तो भी नहीं मिले! ऐसी यह उलझन है।

भुलावे में, मार्गदर्शक साथी

प्रश्नकर्ता : कोई भी गुरु सच्चा रास्ता नहीं बताते हैं।

दादाश्री : परंतु वे गुरु ही रास्ता नहीं जानते, वहाँ पर क्या हो फिर! जानकार ही कोई नहीं मिला। जानकार मिला होता तो यह *उपाधि* ही नहीं होती। जानकार मिला होता तो यहाँ हमें स्टेशन भी दिखाता कि, 'यह स्टेशन है, अब तू गाड़ी में बैठ।' सब दिखाकर पूरा कर देता। यह तो, वह भी भटका हुआ और हम भी भटके हुए, इसलिए भटकते ही रहते हैं। इसलिए सच्चा जानकार ढूँढ निकालो, तो वह स्टेशन दिखाएगा, नहीं तो अनुमान से कुछ भी बताकर भटकाते

ही रहेंगे। एक अंधा दूसरे अंधे को ले जाए, तो वह कहाँ ले जाएगा? सच्चा जानकार तो तुरंत बता देगा। वह उधार वाला नहीं होता, वह तो नकद ही होता है सब। अर्थात् जानकार नहीं मिला, इसलिए जानकार ढूँढो।

प्रश्नकर्ता : परंतु जानकार, वह ऊपरी (बॉस, वरिष्ठ मालिक) होता है या नहीं?

दादाश्री : जानकार ऊपरी होता है, परंतु कब तक? हमें मूल स्थान पर ले जाए तब तक।

इसलिए सिर पर ऊपरी चाहिए ही, दिखाने वाला चाहिए, मार्गदर्शक चाहिए, गाइड चाहिए ही हमेशा। जहाँ देखो वहाँ गाइड चाहिए। गाइड के बिना कोई काम होगा नहीं। हम यहाँ से दिल्ली गए हों और गाइड को ढूँढें तो वह क्या कहलाएगा? गुरु! वह गुरु ही कहलाएगा। पैसे दिए इसलिए गाइड बन जाता है। गुरु मतलब जो हमें मार्ग दिखाएँ, गाइड की तरह।

प्रश्नकर्ता : इसलिए मार्गदर्शन की ज़रूरत तो पड़ेगी ही!

दादाश्री : हाँ, मार्गदर्शन दें, वे गुरु कहलाते हैं। वह रास्ता दिखाने वाला कोई भी हो, वह गुरु कहलाएगा।

सर्व श्रेणी गुरु अवलंबित

प्रश्नकर्ता : गुरु रास्ता बता दें, उस रास्ते पर चलें। फिर गुरु की ज़रूरत है या गुरु को छोड़ देना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, ज़रूरत है अंत तक।

प्रश्नकर्ता : फिर क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : इस गाड़ी में ब्रेक था इसलिए टकराए नहीं, यानी इस ब्रेक को निकाल देना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : वे रास्ता दिखा दें, फिर हमें उन्हें पकड़कर रखने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : रास्ते में अंत तक गुरु की ज़रूरत पड़ेगी। गुरु को उनके गुरु की ज़रूरत पड़ती है। हमें इन स्कूलों में मास्टरों की कब तक ज़रूरत पड़ती है? हमें पढ़ना हो तब न? पढ़ना नहीं हो तो? यानी हमें दूसरा कोई लाभ नहीं चाहिए हो तो गुरु बनाने की ज़रूरत ही नहीं है। यदि लाभ चाहिए तो गुरु बनाएँ। यानी कि ऐसा अनिवार्य नहीं है। यह सब आपकी इच्छानुसार है। आपको पढ़ना हो तो मास्टर रखो। आपको आध्यात्मिक जानना हो तो गुरु बनाने चाहिए और नहीं जानना हो तो कुछ नहीं। कोई नियम नहीं है कि ऐसा ही करो।

यहाँ यदि स्टेशन तक जाना हो तो वहाँ पर भी गुरु चाहिए, तो धर्म के लिए गुरु नहीं चाहिए? अर्थात् गुरु तो हमें हर एक श्रेणी में चाहिए ही।

गुरु बिना 'ज्ञान' नहीं

इसलिए कोई भी ज्ञान गुरु के बिना प्राप्त हो सके, ऐसा है ही नहीं। सांसारिक ज्ञान भी गुरु के बिना नहीं होता और आध्यात्मिक ज्ञान भी गुरु के बिना हो ऐसा नहीं है। गुरु के बिना ज्ञान की आशा रखें, वे सारी गलत बातें हैं।

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति कहते हैं कि 'ज्ञान लेना नहीं होता है, ज्ञान देना भी नहीं होता है, ज्ञान हो जाता है।' तो वह समझाइए।

दादाश्री : यह मूर्छित लोगों की खोज है। मूर्छित लोग होते हैं न, उनकी यह खोज है कि 'ज्ञान लेना नहीं होता, देना नहीं होता, ज्ञान अपने आप हो जाता है।' परंतु वह मूर्छा कभी भी जाती नहीं। क्योंकि बचपन में जो पढ़ा, वह भी ज्ञान लेते-लेते आया है, अध्यापक ने तुझे दिया और तूने लिया। फिर वापस तूने दूसरे को दिया। लेने-देने का स्वभाव वाला जगत् है। अध्यापक ने आपको ज्ञान नहीं दिया था? और आपने दूसरों को दिया। ऐसे लेने-देने का स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : परंतु स्वयं को ज्ञान अपने आप होता है या नहीं?

दादाश्री : अपने आप तो किसी को ही ज्ञान होता है, परंतु

वह अपवाद के रूप में होता है और इस भव में गुरु नहीं मिले हों, परंतु पूर्वभव में तो गुरु मिले ही होते हैं। बाकी सब निमित्त के अधीन है। हमारे जैसे कोई निमित्त मिल आएँ, तो आपका काम हो जाए। तब तक आपको डेवलप होते रहना है। फिर 'ज्ञानी पुरुष' का निमित्त मिले तो उस निमित्त के अधीन सब प्रकट हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मनुष्य स्वयं कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता!

दादाश्री : स्वयं कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इस दुनिया में किसी को हुआ ही नहीं है। यदि अनुभूति हमें खुद को करनी है तो फिर स्कूलों की ज़रूरत ही नहीं है न! कॉलेज़ों की ज़रूरत ही नहीं है न!

स्वयंबुद्ध भी सापेक्ष

प्रश्नकर्ता : ये तीर्थंकर तो स्वयंबुद्ध कहलाते हैं न?

दादाश्री : हाँ, सभी तीर्थंकर स्वयंबुद्ध होते हैं, परंतु पिछले अवतारों में गुरु के द्वारा उन्हें तीर्थंकर गौत्र बंध चुका होता है। इसलिए स्वयंबुद्ध तो वे अपेक्षा से कहलाते हैं कि इस अवतार में उन्हें गुरु नहीं मिले, इसलिए स्वयंबुद्ध कहलाते हैं। वह सापेक्ष वस्तु है। आज जो स्वयंबुद्ध हुए हैं, वे सभी पिछले अवतारों में पूछ-पूछकर आए हैं, यानी सब पूछ-पूछकर ही जगत् चलता रहता है। अपने आप किसी को ही, स्वयंबुद्ध को होता है, वह अपवाद है। वर्ना गुरु के बिना तो ज्ञान ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहा जाता है कि ऋषभदेव भगवान ने खुद के बंधन खुद ही तोड़े। यानी उन्हें दूसरे किसी की ज़रूरत रही नहीं न?

दादाश्री : परंतु उन्होंने मदद ली थी, बहुत पहले ली थी। उन्होंने दो-तीन अवतारों पहले गुरु से मदद ली थी। मदद लिए बिना कोई मुक्त नहीं हुआ है। इसमें भी निमित्त तो होता ही है। यह तो ऋषभदेव के भव में ऐसा दिखा लोगों को कि अपने आप खुद ही बंधन तोड़े। परंतु खुद ही खुद से नहीं हो सकता, कभी भी किसी से हुआ नहीं और होगा नहीं। इसलिए निमित्त हमेशा चाहिए ही।

प्रश्नकर्ता : महावीर स्वामी के गुरु कौन थे?

दादाश्री : महावीर स्वामी के बहुत सारे गुरु हो चुके थे। परंतु वे पिछले एक–दो अवतारों में नहीं हुए थे। यों वह क्या ऐसे ही लड्डू खाने के खेल हैं? तीर्थंकर के अंतिम अवतार में उन्हें गुरु की ज़रूरत नहीं रहती।

कब तक गुरु ज़रूरी?

प्रश्नकर्ता : एकलव्य ने गुरु नहीं होने के बावजूद भी सिद्धि प्राप्त की थी, वह क्या संभव नहीं है?

दादाश्री : एकलव्य को जो सिद्धि मिली वह एक्सेप्शनल है, अपवाद है। वह हमेशा का नियम नहीं है। हर एक नियम के अपवाद हो सकते हैं, दो–पाँच प्रतिशत ऐसा भी होता है, लेकिन उसके कारण हम ऐसा नहीं मान लें कि यही नियम है। इस भव में गुरु नहीं हों, तो पूर्व भव में गुरु मिले ही होते हैं!

प्रश्नकर्ता : एकलव्य को गुरु द्रोण ने नहीं सिखाया और उसने गुरु की मूर्ति के पास से सीखा!

दादाश्री : वे तो सारा पिछले भव में सीखे हुए थे। अभी यह मूर्ति तो निमित्त बनती है। गुरु तो हर एक अवतार में चाहिए ही।

प्रश्नकर्ता : तो फिर ऐसा कह सकते हैं कि 'पिछले भव के मेरे गुरु होंगे वे ही करेंगे मेरा।' तो इस भव में गुरु बनाने की ज़रूरत है?

दादाश्री : लेकिन इस भव में वे गुरु न भी मिलें, और ज़रूरी भी नहीं होता और फिर दूसरे जन्म में भी वे फिर से मिल सकते हैं।

लेकिन ऐसा है न, अभी तो आगे कितना ही रास्ता चलना बाकी रहा, अभी तो कितने ही गुरुओं की ज़रूरत पड़ेगी। जब तक मोक्ष नहीं हो जाता, तब तक गुरु की ज़रूरत पड़ेगी। यथार्थ समकित होने के बाद गुरु की ज़रूरत नहीं रहेगी। इसमें पोल नहीं है, गुरु बिना तो चलेगा ही नहीं।

'गुरु अनावश्यक', वह बात गलत

प्रश्नकर्ता : कितने ही संत ऐसा कहते हैं कि गुरु बनाने की ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : 'गुरु की ज़रूरत नहीं है' ऐसा कहने वाले उनकी खुद की बात करते हैं। लोग उस बात को एक्सेप्ट नहीं करेंगे। पूरी दुनिया गुरु को एक्सेप्ट करती है। खराब गुरु हों, वह तो कभी हो सकता है, परंतु 'गुरु' शब्द ही निकाल दें, वह तो चलेगा नहीं न!

प्रश्नकर्ता : बहुत लोग गुरु नहीं बनाते।

दादाश्री : गुरु नहीं बनाते ऐसा होता ही नहीं। ये लोग ऐसा उपदेश देने लगे कि 'गुरु मत बनाना।' तब से ही हिन्दुस्तान में ऐसा हो गया है। नहीं तो हिन्दुस्तान देश ने तो पहले से ही गुरु को मान्य किया है कि चाहे कोई भी, लेकिन एक गुरु तो रखना।

उल्टा सिखाया, वह भी गुरु

प्रश्नकर्ता : गुरु हों या फिर नहीं हों, इन दोनों में क्या फर्क पड़ता है?

दादाश्री : गुरु नहीं हों तो रास्ते में चलते-चलते सात रास्ते आएँ तो आप कौन-से रास्ते जाओगे?

प्रश्नकर्ता : वह तो मन क़बूल करता हो, वही रास्ता पकड़ेंगे।

दादाश्री : नहीं, मन तो भटकने का खोज निकालकर कबूल करता है, वह कोई रास्ता नहीं कहलाता। इसलिए पूछना पड़ेगा, गुरु बनाने पड़ेंगे। गुरु बनाकर पूछना पड़ेगा कि कौन-से रास्ते मुझे जाना चाहिए! मतलब, गुरु के बिना तो इस दुनिया में, इतना भी, यहाँ से वहाँ तक भी नहीं चल सकते।

स्कूल में अध्यापक रखने पड़े थे या नहीं रखने पड़े थे?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जहाँ जाओ वहाँ अध्यापक चाहिए ही। कहाँ पर अध्यापक की ज़रूरत नहीं पड़ी वह मुझे कहो?

फिर कॉलेज में प्रोफेसर चाहिए या नहीं चाहिए?

प्रश्नकर्ता : चाहिए।

दादाश्री : अर्थात् मनुष्य के रूप में जन्म लिया, तब से ही उसे सिर पर गुरु चाहिए। स्कूल में गया तो भी गुरु चाहिए, कॉलेज में गया तो भी गुरु चाहिए। उसमें गुरु फिर तरह-तरह के, मैट्रिक में पढ़ते हों उन्हें मैट्रिक का गुरु चाहिए, फर्स्ट स्टेन्डर्ड वाला गुरु वहाँ काम नहीं आएगा। यानी गुरु भी अलग-अलग होते हैं। हर एक के एक ही तरह के गुरु नहीं होते। 'कहाँ पढ़ते हैं' उस पर आधारित है।

फिर पुस्तक पढ़ते हों, तब पुस्तक, वह आपकी गुरु नहीं है? पुस्तक वह गुरु हो तभी पढ़ेंगे न? कुछ सिखाए, कुछ लाभ दे, तभी पढ़ेंगे न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : पुस्तकों से सीखते हो, उन पुस्तकों के आधार पर आपको लाभ हुआ। किसी पुस्तक ने हमें मार्गदर्शन दिया, तो वह गुरु कहलाती है। इसलिए पुस्तक भी आपका गुरु है।

अध्यापक के पास से, पुस्तक के पास से, मनुष्यों के पास से आप सीखते हो, उन्हें गुरु ही कहा जाएगा। इसलिए पूरा जगत् गुरु ही है न!

प्रश्नकर्ता : आज का मनोविज्ञान कहता है कि व्यक्ति को बाहरी आधार छोड़कर, खुद के आधार पर आना चाहिए। बाहरी आधार, वह फिर चाहे जो हो, लेकिन जिज्ञासु उसका आधार लेकर पंगु बन जाता है।

दादाश्री : बाहरी आधार लेकर पंगु बने, ऐसा नहीं होना चाहिए। बाहर का आधार छोड़कर खुद के आधार पर ही रहना है। लेकिन खुद का आधार नहीं हो जाए, तब तक बाहर का नैमित्तिक आधार लेना

है। नैमित्तिक! कोई पुस्तक निमित्त रूप बन जाती है या नहीं बन जाती? सबकुछ निमित्तरूप नहीं हो जाता? इसलिए यह आज का मनोविज्ञान जो कहता है आधार छोड़ने को, वैसे कुछ हद तक उसका आधार छोड़ दें, परंतु कुछ हद तक आधार लेना पड़ता है, पुस्तकों का लेना पड़ता है, दूसरा आधार लेना पड़ता है, तीसरा आधार लेना पड़ता है।

एक साहब कहते हैं कि 'गुरु नहीं चाहिए।' मैंने कहा, 'किसके गुरु नहीं थे? वह मुझे बताइए। माता ने जो संस्कार दिए, वह गुरु है न?' 'ऐसा करना बेटे, हं देख, इधर देख।' वह गुरु नहीं तो और कौन है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : इसलिए मदर (माता) प्रथम गुरु होती है कि, 'बेटा, यह चड्डी पहन ले, ऐसा है, वैसा है।' यानी वह भी उसे सीखना पड़ता है। माँ सिखाती है। चलना सिखाती है, दूसरा सिखाती है। कौन-से जन्म में नहीं चला? अनंत जन्मों में चला है, और फिर वही का वही सीखना।

घर में वाइफ नहीं हो और अकेले हो और कढ़ी बनानी हो, तब भी किसी से पूछना पड़ता है कि अंदर क्या-क्या डालूँ? जिसे-जिसे पूछा वे सभी गुरु कहलाते हैं। अर्थात् गुरु की तो जहाँ-तहाँ पग-पग पर ज़रूरत होती ही है। गुरु तो हर एक काम में चाहिए ही। अभी यह कोर्ट का काम पड़े तो इस वकील को ही गुरु बनाएँ, तभी आपका काम चलेगा न। इसलिए हर एक बाबत में, जहाँ जाए वहाँ गुरु की ज़रूरत है। हर बात में गुरु की ज़रूरत है!

प्रश्नकर्ता : इसलिए अंत तक जाना हो तो भी गुरु चाहिए।

दादाश्री : जहाँ जाना हो वहाँ गुरु चाहिए। हम यहाँ से गाड़ी लेकर जा रहे हों और हाईवे के रास्ते से जाना हो, तब किसी से पूछें तब वह ले जाएगा, नहीं तो उल्टे रास्ते चले जाएँगे। इसलिए संसार की बाबत में भी गुरु की आवश्यकता है और निश्चय की बाबत में भी गुरु की आवश्यकता है। अर्थात् 'गुरु क्या है? किसे कहते हैं?' वह समझने की ज़रूरत है।

जिनसे सीखे, वे भी गुरु

प्रश्नकर्ता : तो धर्म के संदर्भ में गुरु एक ही बनाएँ या सब जगह गुरु बनाएँ?

दादाश्री : ऐसा है, कि शिष्यभाव सभी जगह रखना चाहिए। वास्तव में पूरे जगत् को गुरु बनाना चाहिए। पेड़ के पास से भी सीखने को मिलता है। इस आम के पेड़ का हम क्या करते हैं? आम खाने के लिए उसे झकझोरते हैं, फिर भी वह फल देता है, मार खाकर भी फल देता है! इतना उसका गुण यदि अपने में आ जाए तो कितना अच्छा काम हो जाए! वह भी जीव ही है न! वह कोई थोड़े ही लकड़ी है?

प्रश्नकर्ता : दत्तात्रेय ने कुछ प्राणियों को अपना गुरु बनाया था, वह किस अर्थ में?

दादाश्री : वह तो सिर्फ दत्तात्रेय ने ही नहीं, सभी लोग बनाते हैं। एक-एक मनुष्य प्राणियों को गुरु बनाता है। लेकिन ये लोग प्राणियों को गुरु नहीं कहते और दत्तात्रेय ने प्राणियों को गुरु कहा! प्राणी को कोई मारे न, तब वह भाग जाता है। ऐसा लोग भी सीखे हैं कि हमें कोई मारे तो भाग जाना चाहिए। ऐसे भाग जाना लोग प्राणियों से सीखे हैं।

और सिर्फ उन प्राणियों को ही गुरु कहकर निकाल नहीं होता, पूरे जगत् के जीव मात्र को गुरु बनाएँ तो ही छुटकारा है। पूरे जगत् के तमाम जीवों को गुरु बनाएँ, जिसके पास से जो कुछ जानने को मिले वह स्वीकार करें, तो मुक्ति है। सभी जीव मात्र में भगवान बिराजे हुए हैं, इसलिए वहाँ सभी से हम कुछ संपादन करें तो मुक्ति है।

आपको गुरु के बारे में समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : आपके अनुभव भी आपके गुरु हैं। जितना अनुभव हुआ वह आपको उपदेश देगा। और यदि अनुभव उपदेश का कारण नहीं बनता हो तो वह अनुभव नहीं है। इसलिए ये सभी गुरु ही हैं।

अरे, एक आदमी लंगड़ा रहा था और दूसरा एक उसका मज़ाक करके हँसा। फिर थोड़ी देर के बाद वह मुझे मिला। उसने मुझे कहा कि आज मैं ऐसे मज़ाक करके हँसा। तब मैं जागृत हो गया कि अरे, यह तू आत्मा देखता है या क्या देखता है? मुझे यह ज्ञान हुआ, तो सच में सावधान हो गया।

अर्थात् हर एक वस्तु उपदेश देती है। हमेशा हर एक अनुभव उपदेश देकर ही जाता है। एक बार अच्छी तरह बैठे हों और जेब कट गई हो, तब फिर वह उपदेश हमारे पास रह ही जाता है।

इस कुत्ते से भी जानने को मिले तो जान लेना चाहिए। अर्थात् ये कुत्ते भी गुरु कहलाते हैं। यह कुत्ता है, वह डेढ़ घंटे से बैठा हुआ हो, परंतु यदि खाने का बहुत सारा डालें, तो भी वह खाया जाए उतना ही खाता है और दूसरा सब छोड़कर चला जाता है। वह कुछ परिग्रह बाँधकर नहीं जाता कि 'लाओ, मैं ऐसा करूँ।' उसके पास से भी हमें सीखने को मिलता है। इसलिए हर एक वस्तु जिसके पास से हमें सीखने को मिलता हो, उन सभी को हम गुरु मान लें। कुत्ते को कोई गुरु नहीं बनना है। उसे यदि हम गुरु मानें तो उसका उपदेश हममें परिणमित होता है। सही तरीक़ा यही है!

यह ठोकर भी गुरु कहलाती है। गुरु के बिना तो व्यक्ति आगे बढ़े ही किस तरह? हमें रास्ते चलते ठोकर लगे तो ठोकर को भी ऐसा होता है कि 'तू नीचे देखकर चले तो क्या बुरा है?' इसलिए हर एक गुरु, जहाँ-तहाँ सब मुझे गुरु लगे हैं। वह तो जहाँ से लाभ हुआ हो, उन्हें गुरु मान लें। ठोकर से यदि लाभ हुआ हो तो ठोकर को हम गुरु मान लें। इसलिए मैंने तो इस तरह लाभ प्राप्त किए हैं सारे।

बाकी, गुरु पर चिढ़ नहीं आनी चाहिए। गुरु पर चिढ़ने से तो आज ज्ञान अटक गए हैं सारे!

गुरु-विरोधी, पूर्वग्रह से ग्रसित

यानी गुरु किए बिना चले ऐसा नहीं है। 'गुरु के बगैर चले ऐसा

है' कहने वाले विरोधाभास में हैं। इस दुनिया में कभी भी गुरु बनाए बिना कुछ चल सके ऐसा नहीं है। फिर वह टेकनिकल हो या चाहे कोई भी बाबत हो। 'गुरु की ज़रूरत नहीं है' वह वाक्य लिखने जैसा नहीं है। इसलिए लोगों ने मुझे पूछा 'कितने ही लोग ऐसा क्यों कहते?' मैंने कहा, जान-बूझकर नहीं कहते, दोषपूर्वक नहीं कहते, गुरु के प्रति खुद की जो चिढ़ है, वह पूर्वजन्म की चिढ़ आज ज़ाहिर कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : गुरु के प्रति चिढ़ क्यों चढ़ी होगी?

दादाश्री : ये जो-जो लोग ऐसा कहते हैं कि, 'गुरु की ज़रूरत नहीं है।' वे किसके जैसी बात हैं? एक बार बचपन में मैं खीर खा रहा था, और उल्टी हो गई। अब उल्टी दूसरे कारणों से हुई, खीर के कारण नहीं। परंतु मुझे खीर पर चिढ़ चढ़ गई, फिर खीर देखूँ और घबराहट हो जाती। इसलिए जब मेरे घर पर खीर बने, तब मैं बा से कहता कि, 'मुझे यह मीठा खाना पसंद नहीं है, तो आप क्या दोगे?' तब बा कहती हैं, 'भाई, बाजरे की रोटी है। यदि तू घी-गुड़ खाए तो दे दूँ।' तब मैंने कहा कि, 'नहीं, मुझे घी-गुड़ नहीं चाहिए।' फिर शहद दें तभी मैं खाता था, लेकिन खीर को तो छूता ही नहीं था। फिर बा ने मुझे समझाया कि, 'भाई, ससुराल में जाएगा तब कहेंगे, कि क्या इसकी माँ ने खीर नहीं खिलाई कभी? तब तुझे खीर परोसेंगे और तू नहीं खाएगा तो खराब दिखेगा। इसलिए थोड़ा-थोड़ा खाना शुरू कर।' ऐसे-वैसे मुझे पटाया। लेकिन कुछ भी हुआ नहीं। वह चिढ़ घुस गई तो घुस गई। वैसे ही यह चिढ़ घुस गई।

प्रश्नकर्ता : लेकिन गुरु के प्रति चिढ़ क्यों घुस गई?

दादाश्री : वह तो पिछले जन्म में गुरुओं के साथ झंझट हो गया होगा, तो आज उसकी चिढ़ होती है। हर एक प्रकार की चिढ़ घुस जाती है न! कितनों को तो गुरु के प्रति नहीं, भगवान पर चिढ़ होती है। तो वे इस प्रकार से गुरु बनाने के लिए मना करते हैं, जैसे वह उल्टी दूसरे कारणों को लेकर हुई और खीर पर चिढ़ हो गई, वैसे।

बाकी, 'गुरु के बिना चलता है' ऐसा कहने वाले पूरी दुनिया

के विरोधी हैं। क्योंकि खुद की भूल दूसरों पर डालते फिरते हैं। आपको कैसी लगती है बात?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : किसी गुरु के साथ टकराव हो गया हो तो फिर मन में नक्की हो जाता है कि गुरु बनाने जैसे नहीं हैं। अब खुद गुरु से जले हों तो खुद गुरु नहीं बनाए, परंतु खुद का अनुभव दूसरों पर नहीं डाल सकते। किसी गुरु के साथ मुझे कड़वा अनुभव हुआ हो, इसलिए मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए कि सभी को गुरु नहीं बनाने चाहिए। खुद का पूर्वग्रह खुद के पास रहने देना चाहिए। लोगों से यह बात नहीं कहनी चाहिए। लोगों को उपदेश नहीं दिया जा सकता कि ऐसा नहीं करते। क्योंकि पूरी दुनिया को गुरु के बिना तो चलेगा ही नहीं। कहाँ से होकर निकलना है, वह भी पूछना पड़ेगा या नहीं पूछना पड़ेगा?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : इस दुनिया में कोई मनुष्य ऐसा नहीं निकला कि जो गुरु का विरोधी हो। 'गुरु नहीं चाहिए', वे शब्द किसी मनुष्य को बोलने ही नहीं चाहिए। अर्थात् गुरु नहीं चाहिए, वे सब विरोधाभास वाली बातें कहलाती हैं। कोई ऐसा कहे कि 'गुरु की ज़रूरत नहीं है' तो वह एक दृष्टि है, उसका दृष्टिराग है।

इसलिए बात इतनी समझने की ज़रूरत है कि इस जगत् में गुरु की तो ज़रूरत है। गुरु पर चिढ़ रखने की ज़रूरत नहीं है। गुरु शब्द से लोग इतने अधिक भड़क गए हैं! अब उसमें मुख्य तत्व का और इस बात का क्या लेना-देना?

गुरु की ज़रूरत तो अंत तक

यह तो 'गुरु की ज़रूरत नहीं है' कहकर अपना 'व्यू पोईन्ट' रखा है। दूसरा कुछ नहीं। कोई अनुभव ऐसा हुआ होगा कि सभी जगह घूमने के बाद, ऐसे करते-करते, करते-करते खुद को अंदर से

ही समाधान मिलने लगा, उस श्रेणी में आए! इसलिए फिर मन में ऐसा लगा कि गुरु बनाना, वह बोझ बेकार है।

प्रश्नकर्ता : 'गुरु की ज़रूरत नहीं है' कहते हैं, वह तो किसी खास स्टेज में पहुँचने के बाद गुरु काम में नहीं आते। उसके बाद तो स्वयं अपने पर आधारित है।

दादाश्री : वह तो कबीरजी ने भी सब कहा है कि :

'कबीर हद का गुरु है, बेहद का गुरु नहीं!'

यानी गुरु की तो अंत तक ज़रूरत पड़ेगी। 'बेहद' आते-आते तो तेल निकल जाता है।

प्रश्नकर्ता : सांसारिक कामों में गुरु की ज़रूरत है, व्यवहारिक ज्ञान में गुरु की ज़रूरत है। लेकिन खुद अपने को जैसा है वैसा देखने के लिए गुरु की ज़रूरत नहीं है, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : संसार में भी गुरु चाहिए और मोक्षमार्ग में भी गुरु चाहिए। वह तो कोई ही व्यक्ति बोलता है कि 'गुरु की ज़रूरत नहीं है।' गुरु के बिना तो चलेगा ही नहीं। गुरु अर्थात् उजाला कहलाता है। अंत तक गुरु चाहिए। श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है कि बारहवें गुणस्थानक तक गुरु की ज़रूरत पड़ेगी, बारहवें गुणस्थानक यानी भगवान होने तक गुरु की ज़रूरत पड़ेगी।

प्रश्नकर्ता : गुरुओं का विरोध करने के लिए मेरा प्रश्न नहीं है। मैं तो वह समझना चाहता हूँ।

दादाश्री : हाँ, लेकिन गुरु की खास ज़रूरत है इस दुनिया में। मेरे भी अभी तक गुरु हैं न! मैं पूरे जगत् का शिष्य बनकर बैठा हूँ। तो मेरा गुरु कौन? लोग! अर्थात् गुरु की तो अंत तक ज़रूरत है।

जो बात सत्य हो, उसे सत्य कहने में हर्ज़ क्या है? 'ज्ञानी पुरुष' तो, गलत होने पर तुरंत ही उसे गलत कह देते हैं। वह फिर चाहे राजा का हो या चाहे जिसका। आपको नहीं मानना हो तो भी मुझे हर्ज नहीं

है, लेकिन मैं नहीं चलने दूँगा। मैं तो पूरे वर्ल्ड को फेक्ट कहने आया हूँ। क्योंकि अभी तक पोलम्पोल चला है, तो यह दशा हुई हिन्दुस्तान की। देखो तो सही!

हमसे पोला (कुछ अलग, कुछ भी) नहीं बोला जा सकता। अब जगत् क्या ढूँढता है? पोला बोलकर भी ठंडक रखो, पोला बोलकर भी यहाँ दख़ल नहीं हो तो अच्छा। परंतु हमसे एक शब्द भी नहीं बोला जा सकता ऐसा। नहीं तो हमें तो वह भी आता था, पर नहीं बोल सकते। हमसे तो 'है उसे हैं' कहना पड़ता है और 'नहीं है उसे नहीं' कहना पड़ता है। 'नहीं है, उसे है' नहीं कहा जा सकता और 'है उसे नहीं है' नहीं कहा जा सकता।

गुरु खुद ही कहते हैं कि 'गुरु मत बनाना।' तो आप कौन इस जगह पर? उसी प्रकार इस तरफ कहेंगे, 'निमित्त की ज़रूरत नहीं है।' तब आप कौन हैं अभी?

निमित्त ही महा उपकारी

प्रश्नकर्ता : हाँ, उपादान हो तो ओटोमेटिक निमित्त मिल जाते हैं, वह बात प्रचलित है।

दादाश्री : उपादान तो अपने वहाँ बहुत लोगों का इतना अधिक उच्च कोटि का है, परंतु उन्हें निमित्त नहीं मिलने से भटकते रहते हैं। इसलिए वह वाक्य ही भूल वाला है, कि 'उपादान होगा तो निमित्त अपने आप आ मिलेंगे।' यह वाक्य भयंकर जोखिमदारी वाला वाक्य है। परंतु यदि ज्ञान की विराधना करनी हो तो ऐसा वाक्य बोलना!

प्रश्नकर्ता : निमित्त और उपादान के बारे में ज़रा विशेष स्पष्टता से समझाइए। यदि उपादान तैयार हो तो निमित्त अपने-आप मिल जाएगा। और यदि निमित्त मिलते रहें, परंतु उपादान तैयार नहीं हो तो फिर निमित्त क्या करेगा?

दादाश्री : वे सारी बातें लिखी हुई हैं न, वे सारी बातें करेक्ट नहीं हैं। करेक्ट में एक ही वस्तु है कि निमित्त की ज़रूरत है और

उपादान की भी ज़रूरत है। परंतु उपादान कम हो और उसे निमित्त मिल जाए, तो उपादान बढ़ जाता है उसका।

निमित्त ही उपकारी है। इन स्कूलों को बंद कर दिया जाए तो? ऐसा समझें कि, 'बच्चे होशियार होंगे, उपादान होगा, उस समय निमित्त आ मिलेगा।' ऐसा करके सारे स्कूल हटा दिए जाएँ तो?

प्रश्नकर्ता : वह तो नहीं चलेगा। लेकिन यह तो व्यवहार की बात हुई सारी।

दादाश्री : नहीं, व्यवहार में भी वही बात और इसमें (निश्चय में) भी वही बात न! इसमें भी निमित्त की पहले ज़रूरत है।

यहाँ स्कूल हटा दिए जाएँ, किताबें हटा दी जाएँ, तो कोई भी मनुष्य कुछ पढ़ेगा नहीं, लिखेगा नहीं। निमित्त होगा तो अपना काम आगे चलेगा, नहीं तो काम आगे चलेगा नहीं। तो निमित्त में क्या-क्या है? पुस्तकें निमित्त हैं, मंदिर निमित्त हैं, जिनालय निमित्त हैं, ज्ञानी पुरुष निमित्त हैं। अब ये सभी पुस्तकें, मंदिर नहीं हों तो इस उपादान का क्या होगा? अर्थात् निमित्त हों तभी काम होगा, नहीं तो काम होगा नहीं।

चौबीस तीर्थंकरों ने बार-बार यही कहा है कि, 'निमित्त को भजो। उपादान कम होगा तो, निमित्त मिलेगा तो उपादान उसका जागृत हो जाएगा।' फिर भी उपादान का तो इसलिए कहना चाहते हैं कि यदि तुझे निमित्त मिलने के बाद भी उपादान तू अजागृत रखेगा, यदि उपादान तू जागृत नहीं रखेगा और तू झोंका खा जाएगा, तो तेरा काम नहीं होगा और तुझे मिला हुआ निमित्त व्यर्थ जाएगा। इसलिए सावधान रहना। ऐसा कहना चाहते हैं।

उपादान अर्थात् क्या? कि घी रखना, बाती रखना, सब तैयार रखना पूरा। ऐसा तैयार तो अनंत जन्मों से इन लोगों ने रखा हुआ है। परंतु सिर्फ दीया प्रज्वलित करने वाला नहीं मिला। घी-बातियाँ सब तैयार हैं, परंतु प्रज्वलित करने वाला चाहिए! इसलिए मोक्ष में ले जाने वाले निमित्त के शास्त्र नहीं मिले हैं, मोक्ष में ले जाने वाले निमित्त,

ऐसे ज्ञानी पुरुष नहीं मिले हैं, वे सभी साधन मिलते नहीं हैं। वह निमित्त जिसे कहा जाता है, उसके बिना तो भटकते रहते हैं।

लोग निमित्त को इस प्रकार समझे हैं कि, 'उपादान होगा तो निमित्त तुझे उस घड़ी मिल आएगा।' लेकिन मिल जाने का अर्थ ऐसा नहीं होता। भावना होनी ही चाहिए। भावना के बिना तो निमित्त भी नहीं मिलता।

यह तो बात का दुरुपयोग हुआ है सारा। निमित्त ऐसा बोलता है कि निमित्त की ज़रूरत नहीं है! खुद निमित्त होने के बावजूद ऐसा बोलता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा श्रीमद् राजचंद्र भी कहते हैं।

दादाश्री : सिर्फ श्रीमद् राजचंद्रजी नहीं, तीर्थंकरों ने भी वही कहा है कि निमित्त के बिना कोई काम होगा नहीं। अर्थात् 'उपादान होगा तो निमित्त आ मिलेंगे।' 'निमित्त की ज़रूरत नहीं है' यह तीर्थंकरों की बात नहीं है या श्रीमद् राजचंद्र की बात नहीं है। ऐसी बात जो बोले, उसकी जोखिमदारी है। उसमें दूसरे किसी की जोखिमदारी नहीं है।

कृपालुदेव ने एक ही बात कही है कि, 'दूसरे किसी की खोज मत कर। केवल एक सत्पुरुष को खोजकर, उनके चरणकमल में सर्व भाव अर्पण करके बरतता जा। फिर भी यदि मोक्ष नहीं मिले तो मेरे पास से लेना।' नहीं तो ऐसा ही लिखते कि तू अपने आप घर पर सोता रह, उपादान जागृत करते रहना, तो तुझे निमित्त आ मिलेंगे।

वह बात खरी, लेकिन निश्चय में

प्रश्नकर्ता : दूसरी एक ऐसी भी मान्यता है कि 'निमित्त की आवश्यकता तो स्वीकार्य है ही। लेकिन निमित्त कुछ कर नहीं सकता न!'

दादाश्री : यदि निमित्त कुछ कर नहीं सकता वैसा यदि कभी हो न, तो फिर कुछ ढूँढने को रहा ही नहीं न! पुस्तक पढ़ने की ज़रूरत क्या रही? मंदिर जाने की ज़रूरत ही कहाँ रही? कोई अक्ल वाला कहे न, कि 'साहब, तब फिर यहाँ किसलिए बैठे हो? आपका हमें क्या काम है? पुस्तकें किसलिए छपवाई हैं? यह मंदिर क्यों

बनवाया है? क्योंकि निमित्त कुछ कर ही नहीं सकता न!' ऐसा कहने वाला कोई निकलेगा या नहीं निकलेगा?

अँधा मनुष्य ऐसा कहे कि 'मैं अपनी आँखें खुद बनाऊँगा, और देखूँगा, तभी सही है।' तब हम हँसते हैं या नहीं हँसते? ऐसी ये बातें करते हैं। स्कूल में एक प्रोफेसर हैं। उन्हें बच्चों की ज़रूरत है ही, लेकिन बच्चों को प्रोफेसर की ज़रूरत नहीं! क्या एक नया मेनिया (पागलपन) चला है! जो निमित्त कहलाते हैं, ज्ञानी पुरुष या गुरु, वे सभी निमित्त कहलाते हैं, उन्हें हटा देते हैं!

'ज्ञानी पुरुष' निमित्त हैं और आपका उपादान है। उपादान चाहे जितना तैयार होगा, लेकिन ज्ञानी पुरुष के निमित्त के बिना कार्य नहीं होगा। क्योंकि यह एक ही कार्य ऐसा है, आध्यात्मिक विद्या कि निमित्त के बिना प्रकट नहीं होता है। जबकि निमित्त के बिना प्रकट नहीं होता, वैसा मेरे कहने का भावार्थ है, लेकिन वह नाइन्टी नाइन परसेन्ट ऐसा ही है। परंतु एक प्रतिशत उसमें भी छूट होती है। निमित्त के बिना भी प्रकट हो जाता है। परंतु वह नियम में नहीं माना जा सकता, उसे नियम में नहीं रखा जा सकता। नियम में तो निमित्त से ही प्रकट होता है। अपवाद अलग चीज़ है। नियम में हमेशा अपवाद होना ही चाहिए। वही नियम कहलाता है!

तब इसमें लोग कहाँ तक ले गए हैं कि 'सभी वस्तुएँ अलग हैं, एक वस्तु दूसरी वस्तु के लिए कुछ भी नहीं कर सकती', उसके साथ इसे जोइन्ट कर दिया है। इसलिए उन्हें ऐसा ही लगता है कि कोई दूसरा किसी के लिए कुछ नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : वे लोग ऐसा ही कहते हैं कि कोई किसी के लिए कुछ कर नहीं सकता।

दादाश्री : अब यह वाक्य इतना अधिक गुनहगारी वाला वाक्य है।

प्रश्नकर्ता : शास्त्र में जो ऐसा कहा गया है कि कोई किसी के लिए कुछ कर नहीं सकता, वह क्या है?

दादाश्री : वह तो अलग बात है। शास्त्र अलग कहना चाहते

हैं और लोग समझे अलग! चुपड़ने की दवाई पी जाते हैं और मर जाते हैं, उसमें कोई क्या करे? उसमें डॉक्टर का क्या दोष?

कोई किसी के लिए कुछ नहीं कर सके ऐसा होता, तब तो वकील काम ही नहीं आते न! ये डॉक्टर काम में ही नहीं आते न! पत्नी काम आएगी नहीं न! ये तो सभी एक-दूसरे के काम आते हैं।

प्रश्नकर्ता : कोई किसी के लिए कुछ कर नहीं सकता, वह जो बात लिखी है, वह किस संदर्भ में लिखी गई है?

दादाश्री : वह तो निश्चय में कही हुई है, वह बात व्यवहार में नहीं है। व्यवहार में लेना-देना है ही सभी के साथ और निश्चय में कोई किसी का कुछ नहीं कर सकता। एक तत्व दूसरे तत्व को कुछ भी हेल्प नहीं करता, लेकिन वह निश्चय की बात है। परंतु व्यवहार से सबकुछ होता है। यह तो उल्टे वाक्य समझाकर इस पब्लिक को बहुत नुकसान हुआ है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए वह वस्तु ही समझना चाहता हूँ।

दादाश्री : वह तो कोई तत्व किसी को हेल्प नहीं कर सकता, नुकसान नहीं कर सकता, तत्व आपस में मिलते नहीं हैं, ऐसा कहना चाहते हैं। उसके बदले, यह बात लोग व्यवहार में खींच लाए हैं। वर्ना व्यवहार में तो पत्नी के बिना नहीं चलता, पत्नी को पति के बिना नहीं चलता। व्यवहार सारा पराश्रित है, निश्चय पराश्रित नहीं है, निश्चय स्वाश्रित है। अब व्यवहार में उस निश्चय को लाएँ, तो क्या दशा होगी?

'गलत' का ज्ञान ज़रूरी

आपको समझ में आती है यह बात? मेरी बात को सही नहीं ठहराना है। यह आपको सही लगे तो स्वीकारना। मैं किसी बात को सही नहीं ठहराना चाहता हूँ। आपको ठीक लगे तो स्वीकारना और नहीं स्वीकारो तो उसमें भी मुझे हर्ज नहीं है। मुझे तो किसी भी संयोग में सत्य बोलना चाहिए। नहीं तो ऐसा सब ही इन लोगों ने चला लिया है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह तो उनका व्यू पोइन्ट है न?

दादाश्री : वह ठीक है। लेकिन यह सत्य यदि मैं ओपन नहीं करूँ तो लोग तो इस सत्य को ढंकने फिरते हैं और यह सत्य कोई हिम्मत से बोल नहीं सकता। 'यह गलत है' ऐसा लगा या नहीं लगा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : गलत का ज्ञान होना चाहिए। एक भाई ने मुझे कहा कि, 'यह गलत है' ऐसा मुझे ज्ञान हो गया। मुझे तो इतना ही चाहिए था। क्योंकि यह तो अनिश्चित रहता है, शंका रहती है कि यह भी थोड़ा सच्चा है और वह भी थोड़ा सच्चा है। तब तक तो इसमें कोई स्वाद नहीं निकाल पाओगे। 'यह गलत है' ऐसा ज्ञान से लगना चाहिए, उसके बाद अच्छा लगेगा!

ऐसा है न, यह कोई बोलता नहीं और सभी ने जारी (प्रचलित) रखा है। मेरे जैसे 'ज्ञानी पुरुष' स्पष्ट बोल सकते हैं और जैसा है वैसा हमसे बोला जा सकता है।

हैं 'निमित्त', फिर भी 'सर्वस्व' ही

पूछो सब, सब पूछा जा सकता है। हर एक प्रश्न पूछा जा सकता है। फिर यह संयोग मिलेगा नहीं। इसलिए सबकुछ पूछ लो। प्रश्न अच्छे हैं और यह सब ज्ञान प्रकट होगा तो लोग जानेंगे न! हम अंत तक की बात करेंगे। आप पूछो तो हम जवाब देंगे।

प्रश्नकर्ता : ऐसा भी कहा जाता है कि ज्ञान गुरु से भी नहीं होता और गुरु के बिना भी नहीं होता। वह समझाइए।

दादाश्री : बात तो सच्ची है न! यदि कभी गुरु ऐसा कहें कि, 'मेरे कारण हुआ' तो गलत बात है और शिष्य कहे कि, 'गुरु के बिना हुआ' तो वह भी गलत बात है। हमने क्या कहा है? कि यह आपका ही आपको देते हैं। हमारा कुछ भी देते ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : इसमें आप निमित्त तो हैं ही न?

दादाश्री : हाँ, निमित्त तो हैं न! हम तो खुद ही आपसे कहते हैं न, कि हम तो निमित्त हैं। मात्र निमित्त! परंतु यदि आप निमित्त

मानोगे तो आपका नुकसान होगा, क्योंकि उपकारी भाव चला जाएगा। जितना उपकारी भाव उतना अधिक परिणाम प्राप्त होगा। उपकारी भाव को भक्ति कहा है।

प्रश्नकर्ता : आपको निमित्त मानें, तो उपकारी भाव चला जाएगा, वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : हम तो आपसे कहते हैं कि हम निमित्त हैं, परंतु यदि आपने निमित्त माना तो आपको लाभ नहीं मिलेगा। आप उपकार मानोगे तो परिणमित होगा। ऐसे नियम हैं इस दुनिया के। लेकिन ये निमित्त ऐसे हैं कि मोक्ष ले जाने वाले निमित्त हैं। इसलिए महानतम् उपकार मानना। वहाँ अर्पण करने को कहा है। सिर्फ उपकार ही नहीं मानना है, लेकिन सारा मन-वचन-काया अर्पण कर देना। सर्वस्व अर्पण करने में देर ही नहीं लगे, ऐसा भाव आ जाना चाहिए।

वीतरागों ने भी कहा है कि ज्ञानी पुरुष तो ऐसा कहते हैं कि 'मैं तो निमित्त हूँ', परंतु खुद मुमुक्षु को, 'वे निमित्त हैं' ऐसा नहीं मानना चाहिए। मुमुक्षुओं को निमित्त भाव नहीं दिखाना चाहिए कभी भी कि 'अरे, आप तो निमित्त हैं। उसमें आप क्या करने वाले हैं?' 'वे ही हमारा सर्वस्व हैं', ऐसा बोलना, नहीं तो इसे 'व्यवहार चूक गए' कहा जाएगा। आपको तो, 'वही मोक्ष में ले जाने वाले हैं', ऐसे कहना है। और ज्ञानी पुरुष ऐसा कहें कि, 'मैं निमित्त हूँ', इस तरह का दोनों का व्यवहार कहलाता है।

अर्थात् वस्तुस्थिति में यह इतना सरल मार्ग है, समभावी है, कोई *उपाधि* रूप नहीं है और फिर मार्ग दिखाने वाले और कृपा करने वाले खुद क्या कहते हैं? कि 'मैं निमित्त हूँ'। देखो सिर पर पगड़ी नहीं पहनते न, नहीं? नहीं तो कितनी बड़ी पगड़ी पहनकर घूमते रहते! यानी हम देने वाले ही नहीं हैं, निमित्त हैं। डॉक्टर के वहाँ जाएँ, तब तो रोग कुछ मिटे। बढ़ई के वहाँ जाएँ तो रोग मिटेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : इसलिए जिस-जिस चीज़ के निमित्त हैं, वहाँ जाएँ

तब अपना काम होगा। इसलिए क्रोध-मान-माया-लोभ दूर करने हों, यह सारा अज्ञान दूर करना हो, तो ज्ञानी के पास जाना पड़ेगा।

सत् साधन, समाए 'ज्ञानी' में

इसलिए कहा है कि सत् साधन चाहिए। सत् साधन मतलब क्या? सत्देव, सत्धर्म और सद्गुरु! वास्तव में तो शास्त्र भी सत् साधन नहीं हैं, मूर्ति भी सत् साधन नहीं है। सिर्फ ज्ञानी पुरुष ही सत् साधन हैं। उनमें सब आ गया। सत्देव, सद्गुरु और सत्धर्म वे तीनों एक साथ हों, उनका नाम ज्ञानी पुरुष! जब विधि करते हैं तब वे सत्देव हैं, बोलें तब सद्गुरु हैं और सुनें जाएँ तब सत्धर्म है, तीनों वहीं के वहीं है! एक का ही आराधन करना, दूसरा झंझट ही नहीं। नहीं तो तीन का आराधन करना पड़े। यह तो एक में ही सब आ गया।

प्रश्नकर्ता : जैनिज़म में गुरुभाव जैसा तो कुछ है ही नहीं।

दादाश्री : नहीं, आप कहते हो वैसा नहीं है। बाकी देव, गुरु और धर्म पर ही तो इसका स्थापन है। सत्देव, सद्गुरु और सत्धर्म पर तो उसका सारा आधार है। भगवान महावीर ने, चौबीस तीर्थंकरों ने क्या कहा है? कि गुरु के बगैर तो इस दुनिया में चलेगा नहीं। इसलिए सत्देव, सद्गुरु और सत्धर्म ये तीनों साथ में होंगे तो मोक्ष होगा। ऐसा सुनने में आया है थोड़ा बहुत?

सत्धर्म मतलब भगवान के कहे हुए शास्त्र-आगम, वे सत्धर्म है। सत्धर्म तो है, भगवान के कहे हुए शास्त्र हैं, लेकिन गुरु के बिना समझाए कौन? और सद्गुरु तो, अपने यहाँ सब सद्गुरु होते हैं, वे भी अभी सद्गुरु रहे नहीं हैं। क्योंकि उन्हें आत्मज्ञान नहीं है इसलिए। वर्ना, सद्गुरु तो चाहिए ही। आपके वहाँ वे भिक्षा लेने आते हैं, तब आपको भोजन देना है। उसके बदले में आपको वहाँ पढ़ने जाना है। ऐसी भगवान ने व्यवस्था की है। हर एक व्यक्ति को, अस्सी वर्ष के मनुष्य को भी सद्गुरु चाहिए। सत्देव अर्थात् क्या? कि वीतराग भगवान। अब वे हाज़िर नहीं हों, तो उनकी मूर्ति रखते हैं। लेकिन सद्गुरु तो प्रत्यक्ष चाहिए। उनकी मूर्ति नहीं चलेगी।

मन से माना हुआ नहीं चलता

प्रश्नकर्ता : गुरु बनाने चाहिए वह बात सच है, लेकिन हम मन से किसी को गुरु मान लें तो चलेगा?

दादाश्री : कुछ भी नहीं चलेगा। उसे सामने कहने वाला चाहिए कि तूने यह भूल की है। यदि मन से मान लो, तो वह ऐसा है न, इस पत्नी को मन से मान लो न! एक लड़की को देखा और फिर मान लो न कि मेरी शादी हो गई है! फिर शादी नहीं करोगे तो चलेगा?

प्रश्नकर्ता : उदाहरण के तौर पर कोई गुरु परदेस में जाकर हमेशा के लिए बस गए हों और यहाँ आने वाले ही नहीं हों और मुझे उन्हें गुरु मानना हों तो मैं उनका फोटो रखकर उन्हें अपना गुरु नहीं मान सकता?

दादाश्री : नहीं। उससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। गुरु तो, रास्ता दिखाएँ वे गुरु। फोटो रास्ता नहीं बताता। इसलिए वे गुरु काम के नहीं हैं। हम बीमार हो जाएँ, तो डॉक्टर का फोटो रखें और उसका ध्यान करते रहें तो रोग मिट जाएगा?

'आपके' गुरु कौन?

प्रश्नकर्ता : आपको ज्ञान प्रकट हुआ तो आपने किसी को गुरु बनाया था?

दादाश्री : कोई प्रत्यक्ष गुरु तो मिले नहीं हैं। वास्तव में गुरु किसे कहा जाता है? प्रत्यक्ष मिलें तो। नहीं तो, चित्रपट तो ये सभी हैं ही न? कृष्ण भगवान प्रत्यक्ष मिलें, तो काम के। नहीं तो चित्रपट तो लोगों ने बेचे और हमने मढ़वाए। हमें इस भव में डिसाइडेड गुरु नहीं मिले कि ये ही गुरु हैं। वर्ना यदि प्रत्यक्ष हों न, उन प्रत्यक्ष का धारण करे और छह महीने, बारह महीनों तक उन दोनों में गुरु-शिष्य का संबंध रहे, उन्हें गुरु कहा जाता है। हमारा ऐसा कोई संबंध नहीं रहा। प्रत्यक्ष कोई नहीं मिले।

कृपालुदेव के ऊपर भाव अधिक था! परंतु वे प्रत्यक्ष नहीं थे, इसलिए गुरु के रूप में स्वीकार नहीं करूँगा। मैं गुरु की तरह स्वीकार किया किसे कहूँगा? कि प्रत्यक्ष मुझे कहें, प्रत्यक्ष आदेश दें, उपदेश दें, उन्हें मैं गुरु कहूँगा। कृपालुदेव यदि एक पाँच ही मिनट मिले होते मुझे, तो उन्हें मैंने मेरे गुरुपद पर स्थापित कर दिया होता। ऐसा समझ में आया है मुझे! मैंने गुरुपद पर किसी को स्थापित नहीं किया था। दूसरे संतों के दर्शन किए थे। परंतु गुरुपद पर तो, मुझे अंतर में ठंडक हो तो मैं गुरु बनाऊँ, नहीं तो गुरु नहीं बनाऊँगा। संत सच्चे थे, वह बात पक्की है। लेकिन अपने दिल को ठंडक होनी चाहिए न!

उपकार, पूर्व के गुरुओं का

अब, मेरे इस भव में गुरु नहीं हैं, उसका अर्थ ऐसा नहीं कि गुरु कभी भी नहीं थे।

प्रश्नकर्ता : तो पिछले भव में आपके गुरु थे?

दादाश्री : गुरु के बिना तो मनुष्य आगे आता ही नहीं। हर एक गुरु, गुरु के बिना तो आगे आए ही नहीं होते। मेरा कहना है कि बगैर गुरु के तो कोई था ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म में कौन थे आपके गुरु?

दादाश्री : वे बहुत अच्छे गुरु होंगे, लेकिन अभी क्या पता चले हमें!

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र के भी गुरु तो थे ही न?

दादाश्री : उन्हें इस भव में गुरु नहीं मिले थे। उन्होंने ऐसा लिखा है कि यदि हमें सद्गुरु मिले होते तो उनके पीछे-पीछे चले जाते! लेकिन उनका ज्ञान सच्चा है। उन्हें अंतिम दशा में जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ था।

प्रश्नकर्ता : आपको भी जो ज्ञान हुआ, वह गुरु के बिना ही हुआ न?

दादाश्री : वह सारा पिछला हिसाब कुछ लेकर आए हैं। पहले गुरु मिले थे, ज्ञानी मिले थे, उसमें से सामान लेकर आए हैं और किसी गलती के कारण रुक गया होगा। इसलिए इस अवतार में गुरु नहीं मिले, परंतु पिछले अवतार के गुरु तो होंगे न? पिछले अवतार में गुरु मिले होंगे और इस अवतार में ज्ञान प्रकट हो गया!

परंतु मुझे इस भव में विश्वास नहीं था कि इतना बड़ा ज्ञान उत्पन्न होगा। फिर भी वह सूरत के स्टेशन पर अचानक प्रकट हो गया। तब मुझे विश्वास हो गया कि यह तो ग़ज़ब का विज्ञान है! इन लोगों का कोई पुण्य जगा होगा। निमित्त तो किसी को बनाना पड़ता है न? अब लोग समझे कि इन्हें ज्ञान यों ही प्रकट हो गया, लेकिन नहीं, पिछले अवतार में गुरु बनाए थे, उसका फल आया है यह। इसलिए गुरु के बिना तो कुछ भी हो ऐसा नहीं है। गुरु परंपरा चलती ही रहने वाली है।

महत्ता ही जीवित गुरु की

प्रश्नकर्ता : गुरु जीवित नहीं हों, तो भी खुद के शिष्य को मार्गदर्शन देते हैं या नहीं?

दादाश्री : प्रत्यक्ष हों तभी काम के। परोक्ष तो काम के ही नहीं। सदेह हाज़िर नहीं हों, वैसे परोक्ष गुरु कुछ भी हेल्प नहीं करते। फिर भी परोक्ष किस तरह से हेल्प करते हैं? जो गुरु हमें मिले हों और दस-पंद्रह वर्ष हमें लाभ दिया हो, हमने उनकी सेवा की हो और दस-पंद्रह वर्ष एकता रही हो और फिर देहांत हो गया हो तो कुछ लाभ देते हैं। वर्ना, कुछ भी लाभ नहीं देते, माथापच्ची करें तो भी!

प्रश्नकर्ता : तो जो गुरु हमने देखे ही नहीं हों, वे कुछ हेल्प करते ही नहीं?

दादाश्री : वे दो आने (जितना) हेल्प करते हैं। एकाग्रता का फल मिलता है और वह भी भौतिक फल मिलता है। उससे तो अभी 'चार आने कम' वाले हों, वे अच्छे।

प्रश्नकर्ता : जिन गुरु ने समाधि ली हो, वे गुरु हमें फिर मदद करते हैं?

दादाश्री : जिन गुरु ने समाधि ली हो, उनके साथ जीते जी ही हमारा संबंध जुड़ा हो, उनका प्रेम जीता हुआ हो, उनकी कृपा प्राप्त की हुई हो, तो वे गुरु देहत्याग कर लें, फिर उनकी समाधि हो तो भी काम होता है न! एकबार पहचान हो जानी चाहिए। जिन्होंने देखा नहीं हो, उनका काम नहीं होता, फिर उनके पीछे समाधि पर सिर फोड़ो फिर भी उससे कुछ होगा नहीं।

यह तो महावीर के फोटो भी कुछ काम नहीं करते और कृष्ण भगवान के फोटो भी कुछ काम नहीं करते। प्रत्यक्ष हों तभी काम करेंगे। कितने ही अवतारों से कृष्ण भगवान को भजते हैं, लोग महावीर को भजते हैं। लोगों ने कुछ कम किया है? भजना कर-करके थक गए। रोज़ मंदिर गए तो भी देखो धर्मध्यान नहीं बँधता। फिर इसमें भी अवधि होती है। इन दवाईयों की भी अवधि डाली होती है न, वह आप जानते हो न? एक्सपायरी डेट! वैसे ही इसमें भी होता है। लेकिन लोग तो जो चले गए हैं उनके ही नाम को बिना समझे गाते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : जीवित गुरु की इतनी अधिक अपेक्षा क्यों रहती होगी?

दादाश्री : जीवित गुरु नहीं हो तो कुछ भी होता नहीं है, कुछ बात नहीं बनती। सिर्फ उनसे भौतिक लाभ होता है। क्योंकि उतना टाइम अच्छे काम में रहा, उसके बदले में लाभ होता है। गुरु खुद यहाँ पर हाज़िर हों तभी वे आपके दोष निकाल देते हैं, आपके दोष दिखाते हैं। खुद की सभी भूलें खुद को दिखने लगें, उसके बाद उसे गुरु नहीं चाहिए। हमारी भूलें हमें दिखती हैं, इसलिए पूरी दुनिया में सिर्फ हमें ही गुरु की ज़रूरत नहीं पड़ती, वर्ना सभी को गुरु चाहिए। जो चले गए उनके पीछे आप गाते ही रहो न, फिर भी कुछ होता नहीं।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् गुरु के रूप में मूर्ति या फोटो हो फिर भी नहीं चलेगा?!

दादाश्री : कुछ भी नहीं चलेगा। वह चित्रपट हस्ताक्षर नहीं कर सकता। आज यह इन्दिरा गांधी की फोटो लेकर हम बैठें, तो हस्ताक्षर हो जाते हैं क्या? इसलिए आज जो जीवित हैं, वे ही चाहिए। इसलिए आज इन्दिरा गांधी कुछ भी हेल्प नहीं कर सकती या जवाहर कुछ भी हेल्प नहीं कर सकते। अभी तो जो हाज़िर हैं, वे हेल्प करेंगे। दूसरा कोई हेल्प नहीं कर सकता। हाज़िर होंगे उनके ही हस्ताक्षर चलेंगे। पूरे हस्ताक्षर नहीं हों और सिर्फ इनिश्यल्स (आद्याक्षर) होंगे तब भी चलेगा। और इन्दिरा गांधी के पूरे हस्ताक्षर होंगे तो भी नहीं चलेगा।

मूर्ति, वह भी परोक्ष भक्ति

प्रश्नकर्ता : एक संत कहते हैं कि ये जो जड़ वस्तुएँ हैं, मूर्ति-फोटो, उनका अवलंबन नहीं लेना चाहिए। आपकी नज़र के सामने जीवित दिखें, उनका अवलंबन लो।

दादाश्री : वह तो ठीक कहते हैं कि यदि जीवित गुरु अच्छे मिलें तो हमें संतोष होगा। लेकिन गुरु का ठिकाना नहीं पड़े, तब तक मूर्ति के दर्शन करें। मूर्ति तो सीढ़ी है, उसे छोड़ना नहीं। जब तक अमूर्त प्राप्त नहीं हो जाए, तब तक मूर्ति छोड़ना नहीं। मूर्ति हमेशा मूर्त ही देगी। मूर्ति अमूर्त नहीं दे सकती। खुद का जो गुणधर्म हो वही करेगी न! क्योंकि मूर्ति, वह परोक्ष भक्ति है। ये गुरु भी परोक्ष भक्ति है, लेकिन गुरु में जल्दी प्रत्यक्ष भक्ति होने का साधन है। जीवित मूर्ति हैं, वे। इसलिए प्रत्यक्ष हों वहाँ पर जाना। भगवान की मूर्ति के भी दर्शन करना, दर्शन करने में हर्ज नहीं है। उसमें अपनी भावना है और पुण्य बँधता है, इसलिए मूर्ति के दर्शन करें, तो चलेगा अपने लिए। लेकिन मूर्ति बोलती नहीं हमारे साथ कुछ भी। कहने वाला तो चाहिए न कोई? कोई कहने वाला नहीं चाहिए? वैसे कोई खोज नहीं निकाले?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो कब खोजेंगे अब?

स्वच्छंद रुके, प्रत्यक्ष के अधीन ही

इसलिए कहा है न, कि सजीवन मूर्ति के बिना अकेला मत पड़ा रहना। कोई सजीवन मूर्ति ढूँढ निकालना, और फिर वहाँ फिर उनके पास बैठना। तेरे से कुछ दो आने भी वे अच्छे हों, तू बारह आना हो तो चौदह आने वाली मूर्ति के पास बैठना। जो हो चुके हैं, वे आज दोष दिखाने नहीं आएँगे। सजीवन हों, वे ही दोष दिखाएँगे।

इसलिए कृपालुदेव ने कहा है न, 'सजीवन मूर्ति के लक्ष के बिना जो कुछ भी किया जाए, वह जीव के लिए बंधन है। यह हमारा हृदय है।' यह एक ही वाक्य इटसेल्फ सबकुछ समझा देता है। क्योंकि सजीवन मूर्ति के बिना जो भी कुछ करो, वह स्वच्छंद है। प्रत्यक्ष यदि हाज़िर हों, तो ही स्वच्छंद रुकेगा। नहीं तो स्वच्छंद किसी का रुकेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : परंतु प्रत्यक्ष सद्गुरु योग नहीं हो तो जो सद्गुरु हो चुके हैं, उनके जो वचन हों, उनका आधार लेकर जीव यदि पुरुषार्थ करे तो उसे समकित प्राप्त होगा, ऐसा भी कहा है। वह बात सत्य है या नहीं?

दादाश्री : वह तो करते ही हैं न! और समकित हो जाए, तब तो बुख़ार उतर गया ऐसा पता चलेगा न! समकित हो जाए तो बुख़ार उतर गया ऐसा पता नहीं चलेगा? बुख़ार वाली स्थिति और बुख़ार उतरी हुई स्थिति का पता चलेगा या नहीं पता चलेगा? दृष्टिफेर हुआ या नहीं, वह पता नहीं चलेगा? समकित मतलब दृष्टिफेर! कभी एक्सेप्शन, किसी के लिए अपवाद होता है। लेकिन हम यहाँ पर अपवाद की बात नहीं कर रहे हैं। हम तो सब सामान्य प्रकार की बात कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : सद्गुरु के जो वचन हैं, उनका आधार लेकर यदि कुछ पुरुषार्थ किया जाए तो मनुष्य प्राप्ति कर सकता है न?

दादाश्री : कोई परिणाम नहीं आता न! फिर तो कृपालुदेव का वाक्य निकलवा देना कि 'सजीवन मूर्ति के लक्ष्य के बिना जो कुछ भी किया जाए, वह जीव के लिए बंधन है। यह हमारा हृदय है।'

कितना बड़ा वाक्य है! फिर भी लोग जो करते हैं, वह गलत नहीं है। 'यह आप करते हो वह गलत है, उससे मोक्ष नहीं मिलेगा' ऐसा हमलोग कहें तो वह दूसरे कहीं पर ताश खेलने चला जाएगा। उल्टे रास्ते पर चला जाएगा। उससे तो यह जो कर रहा है, वह अच्छा है। लेकिन कृपालुदेव के कहे अनुसार चलो। प्रत्यक्ष सद्गुरु ढूँढो!

इसलिए कृपालुदेव ने बहुत ज़ोर देकर कहा है कि भाई, सजीवन मूर्ति के बिना कुछ मत करना। वह स्वच्छंद है, निरा स्वच्छंद है! जो खुद के ही सयानेपन से आगे चल रहा है, वह मोक्ष तो कभी भी नहीं पाएगा। क्योंकि सिर पर कोई ऊपरी नहीं है। सिर पर कोई गुरु या ज्ञानी नहीं हों तब तक क्या कहलाएगा? स्वच्छंद! जिसका स्वच्छंद रुके उसका मोक्ष होता है। ऐसे ही मोक्ष नहीं होता।

सब से उत्तम तो, गुरु से पूछना चाहिए। लेकिन वैसे गुरु तो इस समय में कहाँ से लाएँ? इसके बजाय तो किसी भी एक व्यक्ति को गुरु बनाना, तो भी चलेगा। आपसे बड़े हों और आपका ध्यान रखते हों और आपको लगे कि, 'मेरे दिल में ठंडक लगती है', तो वहाँ बैठ जाना और स्थापना कर देना। शायद कभी एक-दो भूलें उनकी हों तो निभा लेना। आप पूरे भूल से भरे हैं और उनकी तो एक-दो भूलें हैं, उसमें आप किसलिए न्यायधीश बनते हो? आपसे बड़े हैं, तो आपको ऊँचे ले ही जाएँगे। खुद न्यायधीश बने, वह भयंकर गुनाह है।

जब तक सम्यक्दर्शन नहीं होता है, तब तक स्वच्छंद नहीं जाता। या फिर किसी गुरु के अधीन बरतते हों तो उसका छुटकारा होगा। परंतु बिल्कुल अधीन, सर्वाधीन रूप से बरतता हो तभी! गुरु के अधीन रहता हो उसकी तो बात ही अलग है। भले ही गुरु मिथ्यात्वी होंगे उसमें हर्ज नहीं है, परंतु शिष्य गुरु के अधीन, सर्वाधीन रहे तो उसका स्वच्छंद जाए। कृपालुदेव ने तो बहुत सच्चा लिखा है, परंतु अब वह भी समझना मुश्किल है न! जब तक स्वच्छंद जाएगा नहीं, तब तक किस तरह समझ में आएगा वह? और स्वच्छंद का जाना आसान चीज़ है?

प्रश्नकर्ता : वह तो ज्ञानी नहीं मिलें, तब तक स्वच्छंद जाएगा ही नहीं न!

दादाश्री : नहीं, चाहे बावरे जैसा गुरु भी सिर पर रखा हो और शिष्य अपनी शिष्यता का विनय पूरी ज़िंदगी कभी भी नहीं चूके तो उसका स्वच्छंद गया कहा जाएगा। गुरु के विरोधी होकर इन लोगों ने गालियाँ दी हैं। मनुष्य का ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि वह विनय चूके बगैर रहे, क्योंकि थोड़ा भी आड़ा–टेढ़ा देखे कि बुद्धि पागलपन करती ही है!

सिर पर ज्ञानी नहीं मिलें तब गुरु तो चाहिए। नहीं तो मनुष्य स्वच्छंदता से विहार करता रहेगा। इस पतंग की डोर छोड़ दें, फिर पतंग की क्या दशा होगी?

प्रश्नकर्ता : गुलांट खाएगी।

दादाश्री : हाँ, वह पतंग की डोर छोड़ने जैसा है। जब तक आत्मा हाथ में नहीं आया, तब तक पतंग की डोर छूटी हुई है। आपको समझ में आया न?

देखते ही सिर झुक जाए

प्रश्नकर्ता : हाँ, गुरु बनाने ही चाहिए। गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता, वह सिद्धांत सही है?

दादाश्री : सही है। अब 'गुरु', वह विशेषण है। 'गुरु' शब्द ही गुरु नहीं है। 'गुरु' के विशेषण से गुरु हैं, अर्थात् ऐसे विशेषण वाले हों तो वे गुरु हैं और ऐसे विशेषण वाले हों तो भगवान!

प्रश्नकर्ता : सच्चे गुरु के लक्षण क्या हैं?

दादाश्री : जो गुरु प्रेम रखें, जो गुरु अपने हित में हों, वे ही सच्चे गुरु होते हैं। ऐसे सच्चे गुरु कहाँ से मिलेंगे! गुरु को देखते ही ऐसे अपना पूरा शरीर सोचे बिना ही (उनके चरणों में) झुक जाता है।

इसलिए लिखा है न,

'गुरु ते कोने कहेवाय, जेने जोवाथी शीश झुकी जाय।'

देखते ही अपना मस्तक झुक जाए, उसका नाम गुरु। अतः यदि

गुरु हों, तो विराट स्वरूप होने चाहिए। तो अपनी मुक्ति होगी, नहीं तो मुक्ति नहीं होगी।

गुरु आँखों में समाएँ, वैसे

प्रश्नकर्ता : गुरु किसे बनाएँ, वह भी प्रश्न है न?

दादाश्री : जहाँ पर अपने दिल को ठंडक हो उन्हें गुरु बनाना। दिल को ठंडक नहीं होती, तब तक गुरु मत बनाना। इसलिए हमने क्या कहा है कि यदि गुरु बनाओ तो आँखों में समाएँ वैसे को बनाना।

प्रश्नकर्ता : 'आँखों में समाएँ वैसे', मतलब क्या?

दादाश्री : ये लोग शादी करते हैं तब लड़कियाँ देखते रहते हैं, तो क्या देखते हैं वे? लड़की आँखों में समाए वैसी ढूँढते हैं। यदि मोटी हो तो उसके वज़न से ज़ोर लगता है, आँखों पर ही ज़ोर पड़ता है, वज़न लगता है। पतली हो तो उसे दुःख होता है, आँखों में देखते ही समझ जाता है। उसी तरह 'गुरु आँखों में समाएँ वैसे' मतलब क्या? कि अपनी आँखों में हर प्रकार से फिट हो जाएँ, उनकी वाणी फिट हो जाए, उनका वर्तन फिट हो जाए, वैसे गुरु बनाना!

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही है। वैसे गुरु हों तभी उनका आश्रय महसूस होगा उसे।

दादाश्री : हाँ, यदि गुरु कभी हमारे दिल में बसें ऐसे हों, उनकी कही हुई सभी बातें हमें पसंद हों, तो उनका वह आश्रित हो जाता है। फिर उसे दुःख नहीं रहता। गुरु, वह तो बहुत बड़ी चीज़ है। अपने दिल को ठंडक हुई, ऐसा लगना चाहिए। हमें जगत् भुला दें, उसे गुरु बनाएँ। देखते ही हम जगत् भूल जाएँ, जगत् विस्मृत हो जाए हमें, तो उन्हें गुरु बनाएँ। नहीं तो गुरु का महात्म्य ही नहीं होगा न!

वह किल्ली समझ लेनी है

गुरु का महात्म्य बहुत है। लेकिन यह तो कलियुग के कारण

यह सब ऐसा हो गया है। यह तो दूषमकाल के कारण गुरुओं में बरकत नहीं रही। वेजिटेबल घी जैसे गुरु हो गए हैं, इसलिए काम नहीं होता न! सभी गुरु *गुरुकिल्ली* के बिना घूमते रहते हैं। हाँ, तो एक व्यक्ति ने तो मुझे कहा है कि, 'आप तो हमारे गुरु कहलाते हैं।' मैंने कहा, 'नहीं भाई, मुझे गुरु मत कहना। मुझे पसंद नहीं है। गुरु का अर्थ क्या है? बाहर पूछकर आ सब जगह।' गुरु का अर्थ भारी या हल्का?

प्रश्नकर्ता : भारी।

दादाश्री : तो भारी मतलब अवश्य डूबेगा। वह डूबे तो डूबे, लेकिन उस पर बैठे हों, उन सभी की जलसमाधि हुई है। इस जगत् में यही हो रहा है। फिर मुझे गुरु कहाँ बनाते हो! यानी गुरु से हमें पूछना चाहिए कि 'हे गुरु महाराज, आपके पास डूबें नहीं वैसी गुरुकिल्ली है? आप भारी हैं इसलिए डूबे बगैर रहेंगे नहीं और हमें भी डुबोएँगे। तो आपके पास गुरुकिल्ली है? आप डूबें वैसे नहीं हैं न? तब मैं आपके साथ बैठूँ।' वे 'हाँ' कहें तो बैठ जाना।

प्रश्नकर्ता : कोई ऐसा तो कहेगा ही नहीं न, कि मैं डूबूँ ऐसा हूँ?

दादाश्री : हाँ, लेकिन हम कहेंगे न, कि 'आपमें साहब, अक़्ल ज़रा कम है।' इतना कहें तो तुरंत पता चल जाएगा कि ये डूबें वैसे हैं या नहीं!

नहीं तो बिना गुरु किल्ली के सारे गुरु डूबे हैं। वे डूब गए, परंतु सारे शिष्यों को भी डुबोया। फिर कहाँ जाएँगे, उसका ठिकाना नहीं। गुरु के पास गुरुकिल्ली हो तो वह नहीं डूबेगा। क्योंकि पहले के समय में गुरुओं के गुरु होते थे न, वे परंपरागत कूँची देते जाते थे। अपने शिष्यों से क्या कहते थे? तुम गुरु बनना, लेकिन यह 'गुरुकिल्ली' पास में रखना, तो डूबोगे नहीं और डुबोओगे नहीं। तब आज के गुरुओं से पूछता हूँ कि, 'किल्ली है कोई?' 'कौन-सी किल्ली है वह?' और ये तो भटक मरे! ऊपर मत बैठने देना किसी को। यह गुरुकिल्ली तो भूल गए। गुरुकिल्ली का ही ठिकाना नहीं है। यह कलियुग है इसलिए डूबते हैं, सत्युग में नहीं डूबते थे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन गुरु तो तारणहार होते हैं, वे डूबोते नहीं।

दादाश्री : नहीं, लेकिन उनके पास गुरुकिल्ली हो तो वह तर जाएँगे और दूसरों को तारेंगे। यदि गुरुकिल्ली नहीं होगी न, तो तू दुःखी हो जाएगा। लोग तो वाह-वाह करेंगे ही न, लेकिन फिर उस गुरु का दिमाग़ फट जाता है। दिमाग़ की नस फट जाएगी फिर। मेरी क्या वाह-वाही नहीं करते लोग? यानी गुरुकिल्ली हो तो काम का है। गुरुकिल्ली मतलब ऐसा कुछ खुद के पास साधन हो कि जो किल्ली डूबने ही नहीं दे। वह किल्ली नाम की समझ है, और गुरु अकेले में- प्राइवेटली देते हैं। जो महान गुरु हैं, ज्ञानी पुरुष, वे प्राइवेटली देते हैं कि आप इस तरह अपने शिष्यों के साथ काम लेना, तो आप डूबोगे नहीं और दूसरे भी नहीं डूबेंगे।

प्रश्नकर्ता : गुरु होने के लिए गुरुकिल्ली चाहिए, तो वह गुरुकिल्ली क्या है?

दादाश्री : ज्ञानी पुरुष उसे ऐसी समझ दे देते हैं कि, 'तू ऐसा है और यह सब ऐसा है। तू यह गुरु नहीं बन बैठा है। नाम वाला गुरु बन बैठा है। तू अनामी है। तू लघुत्तम रहकर गुरुता करना, तो तू तर जाएगा और दूसरे लोगों को तारेगा।' यह तो गुरुकिल्ली उनके पास है नहीं और गुरु बन बैठे हैं। 'ज्ञानी' के पास से गुरुकिल्ली समझ लेनी चाहिए। 'ज्ञानी पुरुष' के पास से गुरुकिल्ली ले आनी चाहिए, तो उसकी सेफसाइड रहेगी।

इसलिए लोग हमें कहते हैं कि, 'आप क्या हैं?' मैंने कहा, 'मैं तो लघुत्तम पुरुष हूँ। मुझसे छोटा जीव इस दुनिया में कोई दूसरा है ही नहीं।' अब लघुत्तम पुरुष किसी जगह पर डूबेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं डूबेगा।

दादाश्री : लघुत्तम! यानी सिर्फ स्पर्श होगा, परंतु डूबेगा नहीं। मेरे साथ बैठे हैं, वे भी नहीं डूबेंगे। क्योंकि ज्ञानी पुरुष खुद लघुत्तम होते हैं और तरणतारण हो चुके होते हैं। खुद तर गए हैं और अनेक लोगों को तारने में समर्थ होते हैं।

फर्क, गुरु और ज्ञानी में...

प्रश्नकर्ता : गुरु और ज्ञानी पुरुष, उन दोनों में फर्क समझाइए।

दादाश्री : ज्ञानी पुरुष और गुरु में तो बहुत फर्क है। गुरु हमेशा संसार के लिए ही बनाए जाते हैं। मुक्ति के लिए तो, ज्ञानी पुरुष के बिना मुक्ति ही नहीं है। गुरु तो हमें संसार में आगे ले जाते हैं और खुद जैसे हैं वैसे हमें बना देते हैं। उससे आगे का नहीं दे सकते और मुक्ति तो ज्ञानी पुरुष देते हैं। इसलिए व्यवहार में गुरु की ज़रूरत है और निश्चय में ज्ञानी पुरुष की ज़रूरत है। दोनों की ज़रूरत है।

गुरु तो क्या करते जाते हैं? खुद आगे पढ़ाई करते जाते हैं और पीछे वालों को भी पढ़ाते जाते हैं। मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ, पढ़ना-पढ़ाना, वह मेरा धंधा नहीं है। मैं तो, यदि आपको मोक्ष चाहिए तो पूरा हल ला दूँ, दृष्टि बदल दूँ। हम तो, जो सुख हमने पाया है, वह सुख उसे प्रदान करते हैं और हट जाते हैं।

गुरु ज्ञान देते हैं और ज्ञानी पुरुष विज्ञान देते हैं। ज्ञान संसार में पुण्य बँधवाता है, रास्ता बताता है सारा। विज्ञान मोक्ष में ले जाता है। गुरु तो एक प्रकार के अध्यापक कहलाते हैं। खुद ने कोई नियम लिया हुआ हो और वाणी अच्छी हो तो सामने वाले को नियम में ले आते हैं। दूसरा कुछ नहीं करते। लेकिन उससे संसार में वह मनुष्य सुखी हो जाता है। क्योंकि वह नियम में आ गया इसलिए। ज्ञानी पुरुष तो मोक्ष में ले जाते हैं। क्योंकि मोक्ष का लाइसेन्स उनके पास है।

सांसारिक गुरु हों, उसमें हर्ज नहीं है। सांसारिक गुरु तो रखने ही चाहिए कि जिन्हें हम फॉलो (अनुसरण) करें। लेकिन ज्ञानी, वे तो गुरु नहीं कहलाते। ज्ञानी तो परमात्मा कहलाते हैं, देहधारी रूप में परमात्मा! क्योंकि देह के मालिक नहीं होते हैं वे खुद। देह के मालिक नहीं होते, मन के मालिक नहीं होते, वाणी के मालिक नहीं होते।

गुरु को तो ज्ञानी पुरुष के पास जाना पड़ता है। क्योंकि गुरु के भीतर क्रोध-मान-माया-लोभ आदि की कमज़ोरियाँ होती हैं, अहंकार

और ममता होते हैं। हम कुछ (चीज़) दें तो वे धीरे से उसे अंदर रखवा देते हैं। अहंकार और ममता, जहाँ देखो वहाँ पर होते ही हैं! लेकिन लोगों को गुरुओं की भी ज़रूरत है न!

अनासक्त गुरु काम के

प्रश्नकर्ता : अर्थात् बिना आसक्ति वाले गुरु चाहिए, ऐसा अर्थ हुआ न?

दादाश्री : हाँ, बिना आसक्ति वाले चाहिए। आसक्ति वाले हों, धन की आसक्ति हो या दूसरी आसक्ति हो, वे किस काम के? हमें जो रोग है, उन्हें भी वही रोग है। दोनों रोगी। अस्पताल में जाना पड़ता है! वे मेन्टल होस्पिटल के मरीज़ कहलाते हैं। किसी प्रकार की आसक्ति नहीं हो, तो वैसे गुरु बनाए हुए काम के।

रोज़ पकोड़ियाँ खाता हो या लड्डू खाता हो तो भी हर्ज नहीं है, आसक्ति है या नहीं उतना ही देख लेना है। अरे, कोई सिर्फ दूध पीकर रहते हों, लेकिन आसक्ति है या नहीं उतना ही देखना है। यह तो सभी गुरुओं ने तरह-तरह के नखरे दिखाए हैं। 'हम ये नहीं खाता, हम वो नहीं खाता!' छोड़ न झंझट। खा ले न, जो है यहाँ! खाना नहीं मिल रहा या खा नहीं रहा है? ये तो लोगों के सामने नखरे दिखाने हैं। यह तो एक प्रकार का बोर्ड है कि 'हम ये नहीं खाता, हम ये नहीं करता।' यह तो लोगों को खुद की तरफ खींचने के लिए बोर्ड रखे हैं। मैंने ऐसे कई बोर्ड देखे हैं हिन्दुस्तान में। अर्थात् आसक्ति रहित गुरु चाहिए। फिर वह खाता हो या नहीं खाता हो, हमें वह देखने की ज़रूरत नहीं है।

जिसे किंचित् मात्र भी आसक्ति है, वैसे को गुरु बनाएँ तो काम में नहीं आएँगे। ये आसक्ति वाले गुरु मिलने से तो पूरा जगत् टकरा-टकराकर मर गया है। आसक्ति का रोग नहीं हो, तब गुरु कहलाते हैं। किंचित् मात्र आसक्ति नहीं होनी चाहिए।

कितनी कमी निभाई जाए?

प्रश्नकर्ता : गुरु की गति गहन होती है, इसलिए उनका पूर्व परिचय हो, तब समझ में आता है, नहीं तो बाह्य आडंबर से तो पता नहीं चलता।

दादाश्री : दस-पंद्रह दिन साथ में रहें, तब चंचलता का पता चलता है। जब तक वे चंचल हैं न, तब तक अपने दिन नहीं फिरेंगे। वह अचल हो चुका होना चाहिए।

दूसरा, उनमें क्रोध-मान-माया-लोभ का एक भी परमाणु नहीं रहा होना चाहिए या फिर कुछ अंशों तक कम हुए हों, तो चलेगा, चला सकते हैं। लेकिन बिल्कुल भरे हुए हों तो फिर अपने में भी है और उनमें भी है तो फिर अपने पास क्या आया? इसलिए जो कषाय से भरे हुए हों, उन्हें गुरु नहीं बना सकते। जो ज़रा-सा छेड़ने पर फन उठाएँ, तो उन्हें गुरु नहीं बना सकते। जो अकषायी हों या फिर मंद कषाय वाले हों, तो वैसे गुरु बना सकते हैं। मंद कषाय अर्थात् जो मोड़े जा सकें वैसी दशा हो, खुद को क्रोध आने से पहले क्रोध को मोड़ दें, अर्थात् खुद के कंट्रोल में आ चुके होने चाहिए। तो वैसे गुरु चलेंगे। जबकि ज्ञानी पुरुष में तो क्रोध-मान-माया-लोभ होते ही नहीं, वे परमाणु ही नहीं होते। क्योंकि खुद अलग रहते हैं, इस देह से, मन से, वाणी से, सब से अलग रहते हैं!

सद्गुरु किसे कहें?

प्रश्नकर्ता : अब सद्गुरु किसे कहें?

दादाश्री : ऐसा है न, सद्गुरु किसे कहें, वह बहुत बड़ी मुश्किल है। सद्गुरु किसे कहा जाता है, शास्त्रीय भाषा में? कि सत् अर्थात् आत्मा, वह जिसे प्राप्त हुआ है वैसे गुरु, वे सद्गुरु!

अर्थात् सद्गुरु, वे तो आत्मज्ञानी ही सद्गुरु कहलाते हैं, आत्मा का अनुभव हो चुका होता है उन्हें। सभी गुरुओं को आत्मज्ञान नहीं होता। इसलिए जो निरंतर सत् में ही रहते हैं, अविनाशी तत्व में ही रहते हैं, वे सद्गुरु! इसलिए सद्गुरु तो ज्ञानी पुरुष होते हैं।

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र कह गए हैं कि प्रत्यक्ष सद्गुरु के बिना मोक्ष होता ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, उनके बिना मोक्ष होता ही नहीं है। सद्गुरु कैसे

होने चाहिए? कषाय रहित होने चाहिए, जिनमें कषाय ही नहीं हो। हम मारें, गालियाँ दें तो भी कषाय नहीं करें। सिर्फ कषाय रहित ही नहीं, परंतु बुद्धि खत्म हो जानी चाहिए। बुद्धि नहीं होनी चाहिए। इन बुद्धिशालियों के पास हम मोक्ष लेने जाएँ, तो उनका ही मोक्ष नहीं हुआ है तो आपका कैसे होगा? यानी धौल मारें तो भी असर नहीं, गालियाँ दें तो भी असर नहीं, मार मारें तो भी असर नहीं, जेल में डाल दें तो भी असर नहीं। द्वंद्व से परे होते हैं। द्वंद्व समझे आप? नफा-नुकसान, सुख-दुःख, दया-निर्दयता। एक हो वहाँ दूसरा होता ही है, उसका नाम द्वंद्व! इसलिए जो गुरु द्वंद्वातीत हों, उन्हें सद्गुरु कहा जाता है।

इस काल में सद्गुरु होते नहीं। किसी जगह पर, कभी-कभी ही होते हैं। बाकी सद्गुरु होते ही नहीं न! इसलिए ये लोग गुरु को ही उल्टे प्रकार से सद्गुरु मान बैठे हैं। इसलिए यह सब फँसे हुए हैं! नहीं तो सद्गुरु मिलने के बाद चिंता होती होगी?

बड़ा फर्क है, गुरु और सद्गुरु में

प्रश्नकर्ता : हरकोई अपने गुरु को ही सद्गुरु मान बैठा है, वह क्या है?

दादाश्री : अपने हिन्दुस्तान में सभी धर्मों वाले अपने-अपने गुरु को सद्गुरु ही कहते हैं। कोई भी सिर्फ गुरु नहीं कहता। लेकिन उसका अर्थ लौकिक भाषा में है। संसार में जो बहुत ऊँचे चारित्र वाले गुरु होते हैं, उन्हें अपने लोग सद्गुरु कहते हैं। लेकिन वास्तव में वे सद्गुरु नहीं कहलाते। उनमें प्राकृतिक गुण बहुत ऊँचे होते हैं, खाने-पीने में समता रहती है, व्यवहार में समता होती है, व्यवहार में चारित्रगुण बहुत ऊँचे होते हैं, लेकिन उन्हें आत्मा प्राप्त नहीं हुआ होता। वे सद्गुरु नहीं कहलाते।

ऐसा है न, गुरु दो प्रकार के हैं। एक गाईड रूपी गुरु होते हैं। गाईड अर्थात् उन्हें हमें फॉलो करना होता है। वे आगे-आगे चलते हैं मोनिटर की तरह। उन्हें गुरु कहा जाता है। मोनिटर मतलब आप

समझे? जिन्हें हम फॉलो करते रहें। तिराहा आया हो तो वे डिसाइड करते हैं कि भाई, इस रास्ते नहीं, उस रास्ते चलो। तब हम उस रास्ते चलते हैं। उन्हें फॉलो करना होता है, लेकिन वे अपने आगे ही होते हैं। कहीं और दूसरी जगह नहीं होते हैं और दूसरे, सद्गुरु! सद्गुरु मतलब हमें इस जगत् के सर्व दु:खों से मुक्ति दिलवाते हैं। क्योंकि वे खुद मुक्त हो चुके होते हैं। वे हमें उनके फॉलोअर्स की तरह नहीं रखते, और गुरु को तो फॉलो करते रहना पड़ता है हमें। उनके विश्वास पर चलना होता है। वहाँ अपनी अक्लमंदी का उपयोग नहीं करें, और गुरु के प्रति सिन्सियर रहें। जितने सिन्सियर हों, उतनी शांति रहती है।

गुरु तो हम यह स्कूल में पढ़ने जाते हैं न, तब से ही गुरु की शुरूआत हो जाती है, तो अंत अध्यात्म के दरवाज़े तक गुरु ले जाते हैं। लेकिन अध्यात्म में प्रविष्ट नहीं होने देते। क्योंकि गुरु ही अध्यात्म ढूँढ रहे होते हैं। अध्यात्म अर्थात् क्या? आत्मा के सम्मुख होना वह। सद्गुरु तो हमें आत्मा के सम्मुख कर देते हैं।

अर्थात् यह है गुरु और सद्गुरु में फर्क!

वैसे गुरु मिलें, तो भी अच्छा

यह तो, लोग गुरु को समझे ही नहीं हैं। हिन्दुस्तान के लोग गुरु को समझे ही नहीं कि गुरु किसे कहा जाता है? जो भी कोई भगवा कपड़ा पहनकर बैठा हो तो यहाँ लोग उसे 'गुरु' कह देते हैं। शास्त्र के दो-चार शब्द बोले इसलिए उसे अपने लोग 'गुरु' कह देते हैं, परंतु वे गुरु नहीं हैं।

एक व्यक्ति कहता है, 'मैंने गुरु बनाए हैं।' तब मैंने कहा, 'तेरे गुरु कैसे हैं? यह मुझे बता।' आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होते हों वे गुरु। उसके अलावा दूसरे किसी को गुरु कहना गुनाह है। उन्हें साधु महाराज कहा जा सकता है, त्यागी कहा जा सकता है, परंतु गुरु कहना गुनाह है। नहीं तो फिर सांसारिक समझ चाहिए तो वकील भी गुरु है, सभी गुरु ही हैं न फिर तो!

जो गुरु धर्मध्यान करवा सकें, वे गुरु कहलाते हैं। धर्मध्यान कौन करवा सकता है? जो आर्तध्यान छुड़वा सके और रौद्रध्यान छुड़वा सके, वे धर्मध्यान करवा सकते हैं। जिस गुरु को कोई गालियाँ दे, तब रौद्रध्यान नहीं हो तो समझना कि यहाँ पर गुरु बनाने जैसे हैं। आज आहार नहीं मिला हो तो आर्तध्यान नहीं हो, तब समझना कि यहाँ पर गुरु बनाने जैसे हैं।

प्रश्नकर्ता : आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होते हों तो फिर उन्हें सद्गुरु नहीं कह सकते?

दादाश्री : सद्गुरु के पास तो भगवान का प्रतिनिधित्व होता है। जो मुक्त पुरुष हों, वे सद्गुरु कहलाते हैं। गुरु को तो अभी तरह-तरह के सभी कर्म खपाने बाकी होते हैं और सद्गुरु ने तो काफी कुछ कर्म खपा दिए होते हैं। इसलिए आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होते हों, तो वे गुरु और हाथ में मोक्ष दे दें, वे सद्गुरु। सद्गुरु मिलने मुश्किल हैं! परंतु गुरु मिल जाएँ तो भी बहुत अच्छा।

सद्गुरु की शरण में, आत्यंतिक कल्याण

प्रश्नकर्ता : तो किसकी शरण में जाएँ? सद्गुरु की या गुरु की?

दादाश्री : सद्गुरु मिलें तो उसके जैसा कुछ भी नहीं, और सद्गुरु नहीं मिलें, तो फिर गुरु तो बनाने ही चाहिए। भेदविज्ञानी हों, उन्हें सद्गुरु कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर पहले गुरु चाहिए या सद्गुरु?

दादाश्री : गुरु हों तो रास्ते पर आएगा न! और सद्गुरु मिल जाएँ, तब तो कल्याण ही कर दें। फिर गुरु उन्हें मिले हों या नहीं मिले हों, परंतु सद्गुरु तो सब का कल्याण ही कर देते हैं। यदि गुरु मिलें तो वह सही रास्ते पर आ जाता है, फिर उसे समय नहीं लगता। कोई उल्टे लक्षण नहीं होते हैं उसमें। परंतु सद्गुरु का जिसे हाथ लगे, उसका कल्याण ही हो गया।

प्रश्नकर्ता : सत् प्राप्त किए हुए मनुष्य हैं क्या?

दादाश्री : होते नहीं हैं। इस काल में तो बहुत कम होते हैं, किसी जगह पर, वर्ना होते नहीं हैं! वैसे तो कहाँ से लाएँ? वह माल (वैसे गुणों वाले) हो, तब तो फिर यह दुनिया खिल नहीं उठे? उजाला नहीं हो जाए?

प्रश्नकर्ता : तो सद्गुरु के बिना तो भव-जंजाल हटे कैसे?

दादाश्री : हाँ, सद्गुरु नहीं हैं इसीलिए तो यह सब अटका हुआ है न!

प्रश्नकर्ता : श्रीमद्जी कहते हैं कि सद्गुरु की शरण में चला जा, नवें भव में मोक्ष मिल जाएगा, वे क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : सद्गुरु को खोजना मुश्किल है न! वैसे सद्गुरु तो यहाँ मिल सकें, ऐसा है नहीं। वह आसान चीज़ नहीं है। सद्गुरु ज्ञानी होने चाहिए। ज्ञानी नहीं हों, वैसे गुरु होते हैं, लेकिन वे पूर्ण रूप से समझते नहीं हैं। ज्ञानी तो संपूर्ण समझा देते हैं आपको, सारी हक़ीक़त समझा देते हैं। कोई चीज़ जाननी बाकी नहीं रहे, उन्हें ज्ञानी कहते हैं। सिर्फ जैनों का ही जानें ऐसा नहीं हो, सभी कुछ जानते हों, उन्हें ज्ञानी कहते हैं। उन्हें मिलें तो नवें भव में मोक्ष हो जाएगा या फिर दो जन्मों में भी मोक्ष हो सकता है।

पर सद्गुरु मिलने मुश्किल हैं न! अभी तो सच्चे गुरु भी नहीं हैं, वहाँ सद्गुरु कहाँ से होंगे फिर? और श्रीमद् राजचंद्र जैसे सद्गुरु थे, तब लोग उन्हें पहचान नहीं पाए।

पहचानने के बाद ही शरण

प्रश्नकर्ता : उस प्रकार के सद्गुरु की पहचान क्या है? पहचानें किस तरह?

दादाश्री : वह तो प्रकट दीये जैसे पहचान वाले होते हैं। उनकी सुगंध आती है, बहुत सुगंध आती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सद्गुरु को पहचानें किस तरह कि ये सच्चे सद्गुरु हैं?

दादाश्री : ऐसा है, कि यदि खुद जौहरी हो तो उन्हें वह आँखों से ही पहचान सकता है। उनके वाणी-वर्तन और विनय मनोहर होते हैं। मन का हरण कर लें वैसे होते हैं। हमें ऐसा लगता है कि ओहो! अपने मन का हरण हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : कितनी ही बार गुरु में-सद्गुरु में उनका व्यवहार ऐसा होता है कि उसे देखकर मनुष्य का निश्चय डगमगाने लगता है, तो उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : व्यवहार देखकर निश्चय डगमगाने लगे, तो फिर बारीकी से सारी जाँच करना कि अपनी शंका है, वह सच है या गलत है। हर प्रकार से अपनी बुद्धि से जितना नापा जा सके उतना नाप लेना चाहिए, फिर भी यदि कभी हमें अनुकूल नहीं आए तो हम दूसरी दुकान में जाएँ, उन्हें छेड़े बिना। हम दूसरी दुकान खोजें, तीसरी दुकान खोजें, ऐसा करते-करते किसी दिन सही दुकान मिल जाएगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमारा विकास हुए बिना हम सद्गुरु को पहचान किस तरह पाएँगे?

दादाश्री : हम पहले ही पूछ लें कि, 'साहब, मुझे व्यापार नहीं चाहिए। मुझे मुक्ति की ज़रूरत है। तो आप मुक्त हुए हों तो मैं यहाँ पर आपकी सेवा में बैठ जाऊँ?' तो हर्ज क्या है? लेकिन कोई ऐसा कहने वाला है कि 'मैं आपको मुक्ति दिलवाऊँगा?' फिर साक्षी-वाक्षी की ज़रूरत नहीं है। उन्हें तुरंत आप कह दो कि, 'मैं छह महीने बैठूँगा और आपके कहे अनुसार करूँगा और फल नहीं आएगा तो मैं चला जाऊँगा।' लेकिन कोई ऐसा बोलेगा नहीं, वर्ल्ड में कोई भी बोलेगा नहीं। पूछने में हर्ज क्या है? 'साहब आपकी मुक्ति हुई हो तो मुझे कहिए। मुझे मुक्ति चाहिए। मुझे दूसरे स्टेशन रास नहीं आते। बीच के स्टेशनों का मुझे काम नहीं है।' ऐसा साफ-साफ कह दें। तब वे कहेंगे, 'मैं ही भाई, बीच के स्टेशन पर हूँ।' तब हम समझ जाएँगे न, कि हमें बीच का स्टेशन नहीं चाहिए। यानी इस तरह से ढूंढें तो ही पता चलेगा, वर्ना पता नहीं चलेगा। ऐसे विनयपूर्वक उनसे पूछें, वर्ना बिना पूछे बैठे, उससे

तो अनंत अवतार भटके ही हैं न, अभी तक! वे साहब बीच के स्टेशन पर रहते हों और हम भी वहाँ रहें, तो उसका अंत कब आएगा फिर?

प्रश्नकर्ता : तो सद्गुरु ढूँढने के लिए पुस्तक का ज्ञान कैसे काम आता है?

दादाश्री : वह काम में नहीं आता न! उसी से तो यह भटकना हुआ है सारा। अनंत अवतार से पुस्तकों का ज्ञान सीखे तो भी भटकन, भटकन, भटकन! सद्गुरु का मिलना, वह तो बहुत बड़ी चीज़ है। लेकिन जिसे मुक्ति की कामना है, उसे सब मिल आता है। मुक्ति की कामना चाहिए। पूजे जाने की कामना वाले को देर लगेगी, कितने ही जन्मों तक भटकना पड़ेगा। आपको समझ में आया न? किसकी कामना है? मान-पूजादि की कामना! 'आइए, आइए, आइए सेठ!' कहते हैं। गर्वरस चखते हैं। वह स्वाद चखना भी रह जाता है न लोगों का! उसे चखने का मज़ा भी कुछ ओर ही आता है न!

सद्गुरु मिले, वही योग्यता

प्रश्नकर्ता : सद्गुरु मिलने के बाद सद्गुरु के आदेश के अनुसार साधना तो करनी पड़ती है न?

दादाश्री : साधना, उसका अंत होता है। छह महीने या बारह महीने होता है। उसमें चालीस-चालीस वर्ष नहीं चले जाते।

प्रश्नकर्ता : वह तो जैसी जिसकी योग्यता।

दादाश्री : योग्यता की ज़रूरत ही नहीं है। यदि सद्गुरु मिल जाएँ, तो योग्यता की ज़रूरत नहीं है। सद्गुरु नहीं मिले हैं, तो योग्यता की ज़रूरत है। सद्गुरु यदि बी.ए. हुए हों तो उतनी योग्यता और बी.ए.बी.टी. हुए हों तो उतनी योग्यता। उसमें अपनी योग्यता की ज़रूरत ही नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : इस दुनियादारी की योग्यता नहीं, लेकिन इसकी योग्यता तो अलग है न?

दादाश्री : नहीं। सद्गुरु मिल गए, तब किसी योग्यता की ज़रूरत नहीं होती। सद्गुरु मिल गए, वही उसका बड़ा पुण्य कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सद्गुरु मिलने के बाद कोई साधना करनी ही नहीं होती? मात्र सद्गुरु से ही पूरा हो जाता है?

दादाश्री : नहीं, वे साधन बताते हैं वही सब करने होते हैं। परंतु योग्यता की ज़रूरत नहीं है। योग्यता वाले को तो मन में ऐसा होता है कि, 'अब मैं तो समझता ही हूँ न!' योग्यता तो उल्टा मद (नशा) चढ़ाती है। योग्यता हो तो फेंक देने जैसी नहीं है, वह हो तो अच्छी बात है। लेकिन हमें यह समझना चाहिए कि मद हो तो मद निकाल देना चाहिए। उस योग्यता और सद्गुरु का मेल होने में बीच में मद बाधक है। योग्यता वाले दूरी बनाए रखते हैं। वह कम योग्यता वाला हो न, वह तो ऐसा ही कहेगा, 'साहब, मुझमें तो अक्ल नहीं है, अब आपके सिर पड़ा हूँ। आप हल ले आइए।' तो फिर सद्गुरु खुश हो जाते हैं। उतना ही कहने की ज़रूरत है। सद्गुरु और कुछ नहीं माँगते हैं या और कोई योग्यता खोजते नहीं हैं।

सद्गुरु को सर्व समर्पण

प्रश्नकर्ता : सिर्फ सद्गुरु की भक्ति ही होनी चाहिए, वही कहना चाहते हैं न?

दादाश्री : अर्पणता चाहिए, पूर्ण रूप से।

प्रश्नकर्ता : सद्गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण भाव से रहें तो?

दादाश्री : तो काम हो जाए। समर्पण भाव हो तो सारा काम हो जाए। फिर कुछ भी बाकी रहेगा ही नहीं। परंतु मन-वचन-काया सहित समर्पण चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वैसा समर्पण तो, भगवान श्रीकृष्ण अथवा भगवान महावीर की कक्षा के हों, तो ही वह समर्थ कहलाएँगे न? या फिर चाहे किसी भी साधारण को करेंगे तो भी चलेगा?

दादाश्री : वह तो आपको वैसे विराट पुरुष लगें तो करना। आपको लगे कि ये महान पुरुष हैं और उनके सभी कार्य वैसे विराट लगें, तो हमें उन्हें समर्पण करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जो महानपुरुष हो गए है, हज़ारों साल पहले हो गए है, उन्हें हम समर्पण करें, तो वह समर्पण किया कहलाएगा? अथवा उससे अपना विकास होगा क्या? या प्रत्यक्ष महापुरुष ही चाहिए?

दादाश्री : परोक्ष से भी विकास होता है और प्रत्यक्ष मिलें तब तो तुरंत कल्याण ही हो जाता है। परोक्ष, विकास का फल देता है और प्रत्यक्ष के बिना कल्याण नहीं होता।

समपर्ण करने के बाद हमें कुछ भी करना नहीं होता। अपने यहाँ बालक जन्मे तो बालक को कुछ भी करना नहीं होता, उसी तरह समर्पण करने के बाद हमें कुछ भी नहीं करना होता है।

आप जिसे बुद्धि समर्पण करो, उनमें जो शक्ति हो वह आपको प्राप्त हो जाती है। समर्पण किया और उनका सब हमें प्राप्त हो जाता है। जैसे एक टंकी के साथ दूसरी टंकी को ज़रा पाईप से जोइन्ट करें न, तो एक टंकी में चाहे जितना माल भरा हुआ हो, लेकिन दूसरी टंकी में उतना ही लेवल आ जाता है। समर्पण भाव उसके जैसा कहलाता है।

जिनका मोक्ष हो गया हो, जो खुद मोक्ष का दान देने निकले हों, वही मोक्ष दे सकते हैं। वैसे हम मोक्ष का दान देने निकले हैं। हम मोक्ष का दान दे सकते हैं। वर्ना कोई मोक्ष का दान नहीं दे सकता।

प्रश्नकर्ता : क्या सद्गुरु, वे 'रिलेटिव' नहीं हैं?

दादाश्री : सद्गुरु, वे रिलेटिव हैं, परंतु सद्गुरु जो ज्ञान देते हैं, वह रियल है। उस रियल से आत्मरंजन होता है। वह आनंद, चरम कोटि का आनंद है! रियल अर्थात् परमानेन्ट वस्तु और रिलेटिव अर्थात् टेम्परेरी वस्तुएँ। रिलेटिव से मनोरंजन होता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सद्गुरु, वे मनोरंजन का साधन हैं?

दादाश्री : हाँ! सद्गुरु में ज्ञान हो तो आत्मरंजन का साधन और ज्ञान नहीं हो तो मनोरंजन का साधन! आत्मज्ञानी सद्गुरु हों तो आत्मरंजन का साधन। आत्मज्ञानी सद्गुरु हों न, तब तो निरंतर याद ही रहते हैं, वही रियल और नहीं तो सद्गुरु याद ही नहीं आते हैं।

प्रश्नकर्ता : सच्चे गुरु को खुद का सर्वस्व सौंप दें, उससे सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह व्यवहार में कितने अंशों तक सत्य है?

दादाश्री : यह तो व्यवहार में बिल्कुल सच है। गुरु को सौंपें तो एक जन्म उसका अच्छा निकलता है। क्योंकि गुरु को सौंपा मतलब कि गुरु की आज्ञा अनुसार चला तो खुद को दुःख नहीं आता।

परिणाम, गुरु कृपा के...

प्रश्नकर्ता : गुरु और गुरुकृपा की बात करें तो ऐसा प्रश्न खड़ा होता है कि गुरुकृपा क्या है? उसमें कोई तथ्य है या क्या?

दादाश्री : जितनी भी शक्तियाँ हैं न, उन सभी में तथ्य ही होता है, अतथ्य नहीं होता। वे सारी शक्तियाँ हैं और शक्तियाँ हमेशा कुछ वर्षों तक चलती हैं और फिर धीरे-धीरे खत्म हो जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए शिष्य को क्या करना चाहिए?

दादाश्री : शिष्य को तो गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए गुरु को राज़ी रखना चाहिए, और कुछ नहीं। जिस तरह से राज़ी रहते हों, उस तरह से राज़ी रखना। राज़ी करें तब कृपा होती ही है उन पर। परंतु कृपा कितनी प्राप्त होती है? जितना टँकी में हो, जितने गेलन हों उतने गेलन के अनुसार हमारा होता है। कृपादृष्टि मतलब क्या? उनके कहे अनुसार कर रहा हो तब वे राज़ी रहते हैं, वही कृपादृष्टि। उनके कहने से उल्टा करे तब नाराज़गी होती है।

प्रश्नकर्ता : तो गुरु की कृपा सभी पर होती है या ऐसा कुछ नहीं है?

दादाश्री : नहीं, वह तो कृपा कितनों पर नहीं भी होती, वे टेढ़ा करें तो नहीं भी होती।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वे गुरु कैसे कहलाएँगे? गुरु की दृष्टि तो सभी के ऊपर एक-सी रहनी चाहिए।

दादाश्री : हाँ, समान रहनी चाहिए। पर वह मनुष्य गुरु के साथ टेढ़ापन करता हो तो वे क्या करें? वह तो ज्ञानी हो तब समान होता है, लेकिन ये गुरु हैं, तो ज़रा आप टेढ़ापन करो तो आपके ऊपर इतनी सारी उल्टी कर देंगे।

प्रश्नकर्ता : एक पर कृपा करे और एक पर कृपा नहीं करे, ऐसा नहीं हो सकता। गुरु तो सभी पर समान कृपा रखते हैं न?

दादाश्री : नहीं। फिर भी भीतर है, वैसा खुद का फल खुद को मिलता है। खुद उल्टा करे तो उल्टा ही फल मिलता है। जबकि ज्ञानी पुरुष तो वीतराग कहलाते हैं। उन्हें आप थप्पड़ मारो तो भी वे आप पर समान दृष्टि नहीं तोड़ते लेकिन जो आप देंगे, एक गाली दो तो सौ गालियाँ वापस मिलेंगी, एक फूल चढ़ाओ, तो सौ फूल वापस मिलेंगे।

अहंकार जाता है - कृपा से या पुरुषार्थ से?

प्रश्नकर्ता : अहंकार से मुक्त होने के लिए स्व-पुरुषार्थ की ज़रूरत है या गुरु की कृपा ज़रूरी है?

दादाश्री : कृपा की ज़रूरत है। जिनका अहंकार जा चुका हो, ऐसे सद्गुरु की कृपा की ज़रूरत है, तब अहंकार जाएगा। अहंकार का नाश करना, वह गुरु का काम नहीं है। वहाँ तो ज्ञानी का काम है! गुरु वैसा ज्ञान कहाँ से लाएँगे? उनका ही अहंकार जाता नहीं न! जिनकी ममता नहीं गई है, उनका अहंकार कब जाएगा फिर? वह तो ज्ञानी पुरुष मिलें और जिन ज्ञानी में बुद्धि का छींटा भी नहीं हो, तब वहाँ पर उनके पास अहंकार चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : संचित कर्म गुरु के द्वारा कलियुग में नष्ट हो सकते हैं?

दादाश्री : गुरु द्वारा तो नष्ट नहीं होते, लेकिन ज्ञानी पुरुष होने चाहिए, भेदविज्ञानी! जिनमें अहंकार नहीं हो, बुद्धि नहीं हो, वैसे

भेदविज्ञानी हों तो कर्म नाश होते हैं। गुरु तो अहंकारी हों, तो तब तक वैसा कुछ भी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में भी ऐसा लिखा है कि गुरुगम्य ही जानना चाहिए।

दादाश्री : हाँ, पर गुरुगम्य मतलब क्या? आत्मा दिखे, तभी वह गुरुगम्य कहलाएगा। नहीं तो गुरुगम्य तो सभी बहुत लेकर फिरते हैं। आत्मा का अनुभव करवाए तो गुरुगम्य काम का है! वह तो आगम, और आगम से ऊपर हों, वैसे ज्ञानी पुरुष मिलें तब गुरुगम्य प्राप्त होता है।

गुरुमंत्र, नहीं देता फिसलने

प्रश्नकर्ता : हर एक संप्रदाय में हर एक के गुरु ने गुरुमंत्र दिया होता है, वह क्या है?

दादाश्री : सभी गिर नहीं पड़ें, फिसल नहीं जाएँ, उसके लिए किया है। गुरुमंत्र यदि जतन से सँभालकर रखे तो वे फिसल नहीं पड़ेंगे न। परंतु उससे मोक्ष का कुछ भी प्राप्त नहीं करते वे।

प्रश्नकर्ता : गुरु का दिया हुआ नाम स्मरण हो, तो वह, साधारण मनुष्य के दिए हुए से इसकी शक्ति अधिक होती है या नहीं?

दादाश्री : वह दिया हुआ हो तो अच्छा फल देता है। वह तो जैसे-जैसे गुरु। वह गुरु पर आधारित है।

गुरु का ध्यान करना हितकारी

प्रश्नकर्ता : कुछ गुरु उनका खुद का ध्यान करने को कहते हैं, वह योग्य है या नहीं?

दादाश्री : ऐसा है न, ध्यान तो इसलिए करना है कि गुरु के सुख के लिए नहीं, हमें एकाग्रता रहे और शांति रहे उसके लिए ध्यान करना है। परंतु गुरु कैसे होने चाहिए? अपना ध्यान टिके वैसे होने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : परंतु ध्यान सद्गुरु का करना योग्य है या किसी भगवान के अन्य स्वरूप का?

दादाश्री : भगवान के ध्यान की खबर ही नहीं, वहाँ क्या करोगे? उसके बजाय तो गुरु का ध्यान करना। उनका चेहरा दिखेगा तो सही! इसमें सद्गुरु का ध्यान करना अच्छा है। क्योंकि भगवान तो दिखते नहीं है। भगवान तो, मैं दिखाऊँ उसके बाद भगवान का ध्यान होगा। तब तक जिन्हें सद्गुरु माना हो, उनका ही ध्यान करना। मैं भगवान दिखा दूँ, उसके बाद आपको करना नहीं पड़ेगा। जब तक करना है, तब तक भटकना है। कुछ भी करना पड़े, ध्यान भी करना पड़े, तब तक भटकना है। ध्यान सहज होता है। सहज मतलब कुछ भी नहीं करना पड़ता, अपने आप ही हुआ करता है, तब समझना कि छुटकारा हुआ।

शक्तिपात या आत्मज्ञान?

प्रश्नकर्ता : गुरु शक्तिपात करते हैं, वह क्या क्रिया है? उससे शिष्य को क्या फ़ायदा होता है? वह सिद्धि, आत्मज्ञान के लिए छोटा रास्ता है?

दादाश्री : आत्मज्ञान ही प्राप्त करना है न आपको? आपको आत्मज्ञान की ही ज़रूरत है न? तो उस के लिए शक्तिपात की कोई ज़रूरत नहीं है। शक्ति बहुत कम हो गई है? तो विटमिन लो!

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं। गुरु शक्तिपात करते हैं, वह क्रिया क्या है?

दादाश्री : यदि पाँच फीट का चौड़ा नाला हो और नहीं कूदा जा रहा हो, बार-बार वह असफल हो रहा हो, तब हम कहें कि, 'अरे, कूद जा, मैं हूँ तेरे पीछे।' तो वह फिर कूद जाता है! अर्थात् गुरु इस प्रकार हिम्मत बँधवाते हैं। और क्या करते हैं? हिम्मत टूट गई है आपकी?

प्रश्नकर्ता : गुरु के बिना तो हिम्मत टूट ही जाएगी न!

दादाश्री : तो किसी गुरु से कहना, वे हिम्मत बँधवाएँगे। और यदि गुरु राज़ी नहीं हों तो मेरे पास आना। गुरु राज़ी रहें तो मेरे पास मत आना। *राजीपा* (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता, संतुष्टि) ही लेना है इस जगत् में! क्योंकि उन्हें तो, गुरु को क्या ले जाना है? सिर्फ आपको किस तरह से सुख प्राप्त हो, कैसे आपको आत्मज्ञान प्राप्त हो, ऐसा उनका हेतु होता है।

प्रश्नकर्ता : कई गुरु शक्तिपात करते हैं, इसलिए यह प्रश्न पूछा है।

दादाश्री : वह ठीक है। वैसा करते हैं, वह मैं भी जानता हूँ, लेकिन उसकी ज़रूरत कब तक है? वे गुरु शक्तिपात करके फिर खिसक जाते हैं, अंत तक साथ नहीं देते। वैसा किस काम का? साथ दें, वे गुरु अपने।

प्रश्नकर्ता : चमत्कारी गुरु हों तो वहाँ जाएँ?

दादाश्री : जिन्हें कोई लालच हो, वे वहाँ जाएँ। वे आपकी सारी लालच पूरी कर देंगे। जिसे वास्तविक चाहिए, उसे वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं है। चमत्कार करके मनुष्य को स्थिर करते हैं न, लेकिन सच्चे बुद्धिशालियों को तो, ऐसा देखें तो उन्हें विकल्प खड़ा होगा!

गुरु कहाँ तक पहुँचाते हैं?

दो रास्ते हैं। एक सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ने का रास्ता, क्रमानुसार क्रमिकमार्ग और यह अक्रम मार्ग है, यह लिफ्ट मार्ग है। इसलिए फिर इसमें दूसरा कुछ करना नहीं है। वह क्रम से, उसमें जितने गुरु बनाएँ हों, उतने गुरु हमें चढ़ाते हैं। फिर वापस गुरु भी आगे बढ़ते जाते हैं और ये भी बढ़ते जाते हैं। ऐसे करते-करते अंत तक पहुँचते हैं। लेकिन पहले दृष्टि बदले, उसके बाद से वह सच्चा गुरु और सच्चा शिष्य। दृष्टि नहीं बदले तब तक सब बालमंदिर! हाँ, गुरु पर मोह ज़रूर होता है, लेकिन आसक्ति नहीं होनी चाहिए। आसक्ति हो, वह तो बहुत ही खराब कहलाता है। आसक्ति तो वहाँ चलेगी ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : गुरु पर मोह हो, तो वह रुकावट करेगा या नहीं?

दादाश्री : मोह तो सिर्फ, 'मेरा कल्याण करते हैं' उतना ही! कोई कहेगा, 'गुरु में अभिनिवेष (अपने मत को सही मानकर पकड़े रखना) हो तो?' उसमें हर्ज नहीं। वह तो अच्छा है। गुरु जहाँ तक पहुँचे हों, वहाँ तक तो पहुँचाएँगे। हम जिनकी भजना करें, वे जहाँ तक गए होंगे, वहाँ तक हमें पहुँचाएँगे।

प्रश्नकर्ता : जहाँ तक खुद पहुँचे होंगे, वहाँ तक ही पहुँचा सकेंगे?

दादाश्री : हाँ, हमारे शास्त्र इतना ही कहते हैं कि जहाँ तक गए हों, वहाँ तक पहुँचाएँगे। फिर आगे दूसरे मिल आएँगे! और गुरु तो, वे जितनी सीढ़ियाँ चढ़े हों, उतनी सीढ़ियाँ हमें चढ़ा देते हैं। वे दस सीढ़ियाँ चढ़े हों और हम सात ही सीढ़ियाँ चढ़ पाए हों, तो हमें दस तक पहुँचा देते हैं। अभी तो कितनी ही, करोड़ों सीढ़ियाँ चढ़नी हैं। ये कुछ थोड़ी-बहुत सीढ़ियाँ नहीं हैं।

गुरु से चेला सवाया

प्रश्नकर्ता : गुरु खुद अंत तक पहुँचे हुए नहीं हों, फिर भी शिष्य को बहुत अधिक भक्तिभाव हो तो वह गुरु से भी आगे नहीं पहुँच जाएगा?

दादाश्री : हाँ, पर कोई ही! सभी नहीं पहुँचते। उसे आगे दूसरे गुरु बनाने पड़ेंगे। कोई ही ऐसा होशियार हो न, तो उसका दिमाग़ उस तरफ मुड़े तो मार्ग पकड़ ले, वह चलकर अंत तक पहुँच जाता है। परंतु वह अपवाद ही है!

प्रश्नकर्ता : गुरु के उपदेश से शिष्य मुक्ति पा जाएँ और गुरु वहीं के वहीं रहें, ऐसा भी होता है क्या?

दादाश्री : हाँ, ऐसा भी होता है। गुरु वहीं के वहीं रहे हों और शिष्य आगे बढ़ जाएँ।

प्रश्नकर्ता : उसमें पुण्य का उदय काम करता है?

दादाश्री : हाँ, पुण्य का ही उदय! अरे, गुरु सिखलाएँ तब कितने ही शिष्य तो कहते हैं, 'ऐसा नहीं होता है!' तब उसे 'क्या होना चाहिए' वह विचार आता है कि 'ऐसा होना चाहिए।' तो तुरंत ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है! 'ऐसा नहीं होता' वैसा उसे नहीं हुआ होता तो उसे ज्ञान नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : 'ऐसा नहीं हो सकता' वैसा विकल्प खड़ा करने के लिए उसे निमित्त मिला?

दादाश्री : हाँ, वह निमित्त मिला, उतना ही! इसके कारण उसके ज्ञान का उदय हुआ कि ''ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होता, इसलिए ऐसा होना चाहिए।' यानी पुण्य तरह-तरह के चेन्ज (परिवर्तन) ला देता है। पुण्य क्या नहीं करता! इसके लिए पुण्यानुबंधी पुण्य चाहिए।

तब संपूर्ण शुद्धि हो

क्रमिक मार्ग में व्यवहार कैसा है? कि गुरु खुद जितना त्याग करें न, उतना अपने शिष्यों से करने को कहते हैं कि 'इतना करो, इतना आप त्याग करो।' इसलिए वहाँ तप-त्याग सभी कसौटियों में से गुज़रना पड़ता है। परंतु गुरु की कृपा से उसे भीतर दूसरी *उपाधि* नहीं लगती और उन गुरु का उनके गुरु की कृपा से चलता रहता है। परंतु इसी पर बात का अंत नहीं आता है, अत: इसी तरह गाड़ी चलती रहती है। सभी गुरु साफ करते हैं। एक गुरु यदि बनाए हों, तो वे गुरु आपका सारा मैल निकाल देते हैं और उनका खुद का ही मैल हो, वह आपमें रख देते हैं। फिर दूसरे गुरु मिलें, वे फिर आपका जो मैल है, वह निकाल देते हैं और फिर उनका मैल डालते जाते हैं। यह है गुरु परंपरा!

जैसे कि कपड़ा है, तो उसे धोने के लिए साबुन डालते हैं, वह साबुन क्या करता है? कपड़े का मैल निकाल देता है, परंतु साबुन खुद का मैल डाल देता है। तो साबुन का मैल कौन निकालेगा? फिर लोग क्या कहते हैं? 'अरे, साबुन डाला, पर टीनोपोल नहीं डाला?' 'परंतु टीनोपोल किसलिए डालूँ? साबुन से मैल निकाल दिया न!' अब अपने वहाँ यह टीनोपोल पाउडर होता है न, उसे अपने लोग क्या समझते होंगे? वे ऐसा समझते होंगे कि यह कपड़े सफेद करने की दवाई होगी! वह तो उस साबुन का मैल निकालता है, पर अब टीनोपोल खुद का मैल छोड़ गया। उसके लिए दूसरी दवाई ढूँढ निकाल तो टीनोपोल का मैल जाएगा। इस दुनिया में हर एक अपना-अपना मैल छोड़ता जाता है। ऐसा कब तक चलता रहता है? जब तक शुद्ध स्फटिक दवाई नहीं हो, तब तक।

गुरु नहीं बनाए और यहाँ पर आ गए इसलिए यह फायदा हो गया। यदि गुरु बनाए होते, तो फिर वे उनका मैल चढ़ाते। कौन है जो

मैल नहीं देता? ज्ञानी पुरुष! वे खुद मैल वाले नहीं होते, शुद्ध स्वरूप होते हैं और सामने वाले को शुद्ध ही बनाते हैं। दूसरा झंझट नहीं। ज्ञानी नया मैल नहीं चढ़ाते। इसलिए ज्ञानी पुरुष के पास संपूर्ण शुद्धि का मार्ग है। इसलिए अंत में ज्ञानी पुरुष मिलें, तब सारा मैल साफ हो जाता है!

कमी चारित्रबल की शिष्यों में

क्रमिक मार्ग में गुरू सिर पर होते हैं और शिष्य उनके साथ में दो या तीन होते हैं, अधिक नहीं होते। खरे शिष्य, जो गुरु के पदचिन्हों पर चलने वाले होते हैं, वैसे दो या तीन होते हैं, वैसा अपने शास्त्रों ने विवेचन किया है। वह मार्ग तो बहुत कठिन होता है न! वहाँ कहेंगे, 'भोजन की थाली दूसरे को दे देनी पड़ेगी।' तब कहे, 'नहीं साहब, मुझे नहीं पुसाएगा। मैं तो अपनी तरह से घर चला जाऊँगा।' कौन वहाँ खड़ा रहे! इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि क्रमिक मार्ग के हर एक ज्ञानी के पीछे दो-चार शिष्य हुए हैं, कुछ अधिक नहीं हुए।

प्रश्नकर्ता : शिष्यों में उतना चारित्र-बल नहीं है?

दादाश्री : हाँ, वह बल कहाँ से लाएँ? इन सब का तो क्या सामर्थ्य? सभीको भोजन करवा रहे हों और उनको अकेले को श्रीखंड नहीं दिया हो तो अकुलाते रहते हैं। अरे, एक ही दिन, एक ही पहर में इतनी अकुलाहट करता है! परंतु अकुलाया करता है। अरे, दूसरे से कम श्रीखंड दिया हो तो भी अकुलाता रहता है! ये लोग चारित्रबल कहाँ से लाएँगे?

और वैसा मैं एक दिन सभी से कहूँ कि, 'आपको भाता हो वैसा आए तो आप तुरंत ही चखकर दूसरे को दे देना और आपको नहीं भाता हो, वह लेना।' तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : सब जाने लगेंगे।

दादाश्री : हाँ, जाने लगेंगे। 'अच्छा चलते हैं दादा' कहेंगे। दूर से ही 'जय श्री कृष्ण' करेंगे फिर!

इस क्रमिक मार्ग में गुरुओं का कैसा होता है? यह जो व्यवहार

कर रहे हैं वही सच है और इसके कर्त्ता हम हैं। इसलिए इसका त्याग हमें करना है। वैसा व्यवहार होता है। व्यवहार भ्रांति वाला और 'ज्ञान' ढूँढते हैं, तो मिलेगा क्या? आपको कैसा लगता है? मिलेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : रास्ता ही मूलतः उल्टा है वहाँ पर! और इसलिए क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों को भी चिंता और शिष्यों को भी चिंता! निरा ताप (डर), ताप और ताप! गुरु को भी ताप! उन तीन शिष्यों को यदि कहा हो कि, 'आज आप चरणविधि कंठस्थ करके आना, आप इतने पद (भजन) कंठस्थ करके लाना।' और फिर एक शिष्य हो वह सिर खुजलाता है कि अब गुरु ने सौंपा तो है, पर कब होगा? घर जाकर याद करता है, पर फिर होता नहीं है न, इसलिए पूरी रात मन में अजंपा (बेचैनी, अशांति) होता रहता है। ऐसे पढ़ता जाता है और चिढ़ता जाता है। चिढ़ता है, तब गुरु के प्रति अभाव आता जाता है कि ऐसा बोझा किसलिए देते हैं वे! गुरु का कहा हुआ करना अच्छा नहीं लगता, तब क्या होता है? अभाव होता है। क्रमिक मार्ग इसका ही नाम! गुरु भी मन में सोचते हैं कि 'यह सब कंठस्थ नहीं करेगा तो आज उसे झिड़कूँगा।' अब शिष्य वहाँ जाए न तो वहाँ जाते-जाते ही उसे डर लगता है कि 'क्या कहेंगे और क्या नहीं? क्या कहेंगे और क्या नहीं?' तब अरे गुरु किसलिए बनाए थे? रख न एक तरफ। ऐसे ही रहना था न! गुरु के बिना पड़े रहना था न, यदि झिड़की का भय है तो! नहीं तो झिड़की की खुराक लेनी चाहिए। झिड़की की खुराक नहीं चखनी चाहिए?

सुबह जब वे शिष्य आएँ, तब उनमें से दो शिष्यों ने कहे अनुसार किया होता है और एक शिष्य से नहीं हुआ हो तो वहाँ गुरु के पास जाकर बैठता है, पर उसके मुँह पर से साहब पहचान जाते हैं कि इसने कुछ भी नहीं किया है। उसका मुँह ही 'कुछ नहीं किया' वैसा दिखता है। इसलिए साहब भीतर मन ही मन में चिढ़ते रहते हैं कि 'कुछ भी नहीं करता, कुछ नहीं करता है।' शिष्य ने कंठस्थ नहीं किया हो, तो वहाँ पर उसे झिड़कते हैं फिर। गुरु की आँखें लाल हो जाती हैं, आँखें

लाल ही रहती हैं। 'यह शिष्य कुछ करे वैसा नहीं है', इसलिए गुरु चिढ़ते रहते हैं और वह शिष्य डरता रहता है। अब इसका ठिकाना कैसे पड़े? इसलिए वहाँ तीन ही शिष्य, जो उनके पीछे लगे हों, उतने ही शिष्यों को पोषण दे सकते हैं वे। दूसरे सब लोग तो दर्शन करके चले जाते हैं।

क्रमिक मार्ग में अंत तक अकुलाहट जाती नहीं। गुरु और शिष्य, दोनों को अकुलाहट! पर यह अकुलाहट तप है, इसलिए मुँह पर तेज आता है। क्योंकि मिलावट वाले सोने को अकुलाहट कराएँ, तब फिर थोड़ा–थोड़ा सुधरता जाता है न! सच्चा सोना दिखता जाता है न!

भेद, गुरु - शिष्य के बीच...

प्रश्नकर्ता : सामान्य प्रकार से बाहर गुरु–शिष्य के बीच अंतर रहता है न? या एकाकार रहते हैं?

दादाश्री : एकाकार रहें तब तो दोनों का कल्याण हो जाए। परंतु शिष्य से प्याला फूटे तो गुरु चिढ़े बगैर रहते नहीं। वर्ना यदि गुरु–शिष्य कभी ऐसे पुण्यशाली हों और दोनों एकाकार रहें तो दोनों का कल्याण हो जाए। परंतु ऐसा रहता नहीं है। अरे, घड़ीभर भी खुद अपने ऊपर ही उसे विश्वास नहीं आता, ऐसा यह जगत् है, तो शिष्यों का तो विश्वास आता होगा? और एक दिन दो प्याले फोड़ डाले हों न, तो गुरु ऐसे लाल आँखें दिखाते रहते हैं।

देखो *उपाधियाँ* (परेशानियाँ), पूरे दिन परेशानियाँ! और गुरु से कहते भी नहीं कि 'साहब मेरी परेशानियाँ ले लीजिए आप।' हाँ, ऐसे भी पूछा जा सकता है कि, 'साहब, आप किसलिए चिढ़ते हैं, बड़े व्यक्ति होकर?

प्रश्नकर्ता : पर हमसे गुरु को पूछा कैसे जाए? हम तो पूछ ही नहीं सकते न, गुरु से?

दादाश्री : गुरु से पूछें नहीं, तब गुरु का क्या करना है! शिष्य के साथ मतभेद पड़ता हो, तो नहीं समझ जाएँ कि आपका शिष्य के साथ मतभेद पड़ जाता है, तो कैसे गुरु आप! यदि एक शिष्य के

साथ सीधे नहीं रहते, तो आप दुनिया के साथ कब रहेंगे फिर! यूं तो सभी को सलाह देते हैं कि, 'भाई, झगड़ा बिल्कुल मत करना। पर आपका तो कोई रिश्तेदार नहीं, प्रियजन नहीं, अकेले हैं, फिर भी इस शिष्य के साथ किसलिए आप कलह करते हैं? आपके पेट से जन्म तो लिया नहीं, तो आप दोनों को किस चीज़ के कषाय हैं? कषाय तो इन व्यवहार वाले लोगों के होते हैं। परंतु यह तो बाहर से आकर बेचारा शिष्य बना है, वहाँ भी कषाय करते रहते हों?'

यदि पुस्तक इधर-उधर हो गई हो तो गुरु क्या कहते हैं? कितनी ही खरी-खोटी सुनाते हैं कि, 'तुझमें अक्ल नहीं है, तुझे भान नहीं है।' तब शिष्य क्या कहेगा? 'क्या पुस्तक मैं खा गया होऊँगा? यहीं कहीं पड़ी होगी। आपकी झोली में नहीं होगी तो खाट के नीचे होगी।' पर शिष्य 'खा गया होऊँगा?' ऐसा बोलता है! इससे तो घर में झंझट करना अच्छा। इसके बदले तो पत्नी का शिष्य बनना, तो वह डाँटेगी पर फिर वापस पकौड़े खिलाएगी न! कुछ स्वतंत्रता चाहिए न? ऐसे गुरु मिलें, इतनी-इतनी चाकरी करें फिर भी पागल जैसा बोलें तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : पत्नी स्वार्थ के लिए डाँटती है और वह गुरु निःस्वार्थ रूप से डाँटते हैं, उन दोनों में फर्क नहीं है?

दादाश्री : गुरु का निःस्वार्थ नहीं होता। जगत् में निःस्वार्थ मनुष्य कोई होता नहीं है। वह निःस्वार्थी दिखते ज़रूर हैं, पर जहाँ-तहाँ से स्वार्थ करके और सारी उसी की तैयारी ही कर रहे होते हैं। वे सभी स्वार्थी हैं, पोल वाला है सारा। वह तो जिसे ज़रा समझ में आ जाएगा, वह पहचान जाएगा।

बाकी, शिष्य और गुरु वे दोनों झगड़ते ही रहते हैं, दोनों की जमी हुई ही होती है पूरा दिन। हम गुरु से ज़रा मिलने जाएँ और कहें कि, 'क्यों, यह क्या है?' तब वे कहेंगे, 'वह अच्छा नहीं है। शिष्य इतना अधिक खराब मिला है!' हम वह बात शिष्य को नहीं बताएँ, और फिर शिष्य से हम पूछें कि, 'क्यों भाई यह क्या था?' तब वह कहेगा, 'ये गुरु बेकार मिले हैं, इतने खराब मिले हैं!' इसमें

किसकी बात सच्ची? इसमें उनका दोष नहीं है। क्योंकि काल ऐसा आया है। उस काल के कारण यह सब खड़ा हो गया है। पर ऐसा काल आए, तब ज्ञानी पुरुष अवतरित होते हैं।

शिष्य को चाहे जितना आता हो, पर ये गुरु सब ऐसे ही मिलेंगे न! कलियुग के गुरु कैसे होते हैं? शिष्य है, वह कहे कि, 'मैं तो अज्ञानी हूँ, मैं कुछ नहीं जानता' फिर भी गुरु इस बेचारे को मारते रहते हैं, आगे नहीं बढ़ने देते। वे गुरु मरते दम तक भूलें निकालते हैं और शिष्य को परेशान कर देते हैं, तेल निकाल देते हैं। फिर भी शिष्य को सँभालकर रखने वाले कुछ ही होते हैं। परंतु अंत में बारुदखाना ही मानना, अंत में एक दिन फोड़े बगैर रहेगा ही नहीं।

इस काल में शिष्यों की सहनशक्ति नहीं है, गुरु में वैसी उदारता नहीं है। नहीं तो गुरु में तो बहुत उदारता चाहिए, बहुत उदार मन चाहिए। शिष्य का सबकुछ निबाह लेने की उदारता होनी चाहिए।

ऐसे धर्म बदनाम हुआ

शिष्य गालियाँ दें तो भी समता रखे, वे गुरु कहलाते हैं। शिष्य तो कमज़ोर है ही, पर गुरु कहीं कमज़ोर होते हैं? आपको कैसा लगता है? गुरु तो कमज़ोर नहीं होते न! कभी शिष्य की भूल हो जाए और कुछ उल्टा बोल गया तो गुरु फन उठाता है, तो फिर शिष्य तो किस तरह आज्ञा में रहेगा? शिष्य की भूल हो जाए और गुरु भूल नहीं करे, तब शिष्य आज्ञा में रहता है। यह तो गुरु से भूल हो जाए, तो शिष्य किस तरह आज्ञा में रहेगा? गुरु की एक ही भूल देखे न, तो शिष्य आज्ञा में नहीं रहता। लेकिन फिर भी यदि गुरु की आज्ञा में रहा तो हो गया कल्याण!

सभी ओर स्वच्छंदी हो गए हैं। शिष्य गुरु को कुछ मानता नहीं और गुरु शिष्य को कुछ मानता नहीं फिर! शिष्य मन में विचार करे कि, 'गुरु में अक्ल कम है ज़रा। हमें अपने आप अलग तरह से सोच लेना है। गुरु तो बोलते हैं, पर हम करें तब न!' वैसा हो गया है यह सब। इसलिए शिष्य को गुरु कहेगा कि, 'ऐसा करना।' तो शिष्य मुँह

पर 'हाँ' कहता है, पर फिर वापस करता है कुछ अलग। इतना अधिक तो स्वच्छंद चला है। कोई एक शब्द का सही पालन नहीं किया। फिर शिष्य कहेगा, 'गुरु तो बोलते हैं, चक्रम हैं थोड़े।' ऐसा सब चलता है।

नहीं तो सच्चे गुरु और शिष्य के बीच में तो प्रेम की कड़ी इतनी अच्छी होती है कि गुरु जो बोलें, वह उसे बहुत अच्छा लगता है, वैसी तो प्रेम की कड़ी होती है। परंतु अभी तो इन दोनों में झगड़े चलते रहते हैं। गुरु कहेगा, 'ऐसा करना, मैं तुझे कह रहा हूँ। पर शिष्य करता नहीं। यह तो पूरे दिन सास-बहू की कचकच के झगड़े जैसा गुरु-शिष्य में है वहाँ पर।' शिष्य के मन में भी ऐसा होता है कि, 'कहाँ भाग जाऊँ?' पर कहाँ भागे बेचारा? घर से तो भाग छूटा, घर पर तो आबरू बिगाड़ी। अब कहाँ जाएगा? पर कौन सँभाले उसे? नौकरी में भी कोई रखेगा नहीं। अब इसमें क्या हो? न तो गुरु का महात्म्य रहा, न ही शिष्य का महात्म्य रहा, और पूरा धर्म बदनाम हुआ!

शिष्य को मात्र करना है, विनय

वर्ना, गुरु के आधार पर तो कितनी ही जगह पर शिष्य होते हैं। शिष्यों की पूरी चिंता उस गुरु के सिर पर होती है। इस तरह से शिष्यों का चलता रहता है। कुछ सच्चे गुरु होते हैं संसार में, और कुछ शिष्यों का गुरु के सिर पर बोझ होता है, और गुरु जो करें वह ठीक। इसलिए जिम्मेदारी नहीं और शांति रहती है। कोई आधार तो चाहिए ही न! निराधारी मनुष्य जी नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : तो वहाँ शिष्य को कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं?

दादाश्री : शिष्य तो, वह बेचारा क्या कर सकता है? वह यदि कर सकता तो फिर गुरु की ज़रूरत ही नहीं रहती न? शिष्यों से, खुद से कुछ भी नहीं हो सकता। वह तो गुरु की कृपा से सब आगे ही आगे बढ़ता जाता है। मनुष्य खुद अपने आप कुछ भी नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : कृपा गुरु की चाहिए, पर शिष्य को भी करना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : कुछ भी नहीं करना है, सिर्फ विनय रखना है। इस जगत् में करने को है ही क्या? विनय करना है। क्या करना है? यह कोई खिलौने नहीं खेलने या घर के देव स्थान की मूर्तियों को स्नान कराना नहीं है, ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : परंतु खुद को फिर कुछ भी करना नहीं है? गुरु ही सब कर देंगे?

दादाश्री : गुरु ही कर देंगे। खुद को क्या करना है?

प्रश्नकर्ता : तो फिर गुरु किस तरह पहुँचाते हैं?

दादाश्री : गुरु उनके गुरु के पास से लाए होते हैं, वह उसे देते हैं। आमने-सामने सब, वह तो आगे से चला आया है। इसलिए गुरु जो दें, वह शिष्य को ले लेना है।

प्रश्नकर्ता : कुछ गुरु कहते हैं कि अभ्यास करो तो वस्तु मिलेगी।

दादाश्री : हाँ, वह तो बहुत सारे लोग ऐसा ही कहते हैं न! दूसरा क्या कहेंगे? 'यह करो, वह करो, वह करो।' करने से कभी भी भ्रांति जाती है? गुरु के कहे अनुसार करना ही हो, तब तो वैसा हो ही नहीं न? किसी ने कहा हो कि, 'आज सच बोलो।' पर सच बोला ही नहीं जाता न? वह तो पुस्तकें भी बोलती हैं। पुस्तक कहाँ नहीं बोलतीं? उससे कुछ होता नहीं न? पुस्तक में कहते हैं न, कि 'प्रमाणिकता से चलो।' पर कोई चला है? लाखों जन्मों तक वही का वही किया है, दूसरा कुछ किया ही नहीं। तोड़फोड़, तोड़फोड़, तोड़फोड़ ही की है।

बरते उतना ही बरतवा पाए

गुरु के पास जाएँ तो वहाँ हमें कुछ भी पालन करना ही नहीं होता। पालना हो तो हम उसे नहीं कहें कि 'तू पाल भाई, मैं कहाँ पालूँ? पाल सकता तो तेरे यहाँ मैं किसलिए आया?' अब नहीं पाला जाता उसका कारण क्या है? यह सामने वाला व्यक्ति जो पालन करने को कह रहा है, वह खुद ही नहीं पालता। हमेशा गुरु पालन करते हों वहाँ शिष्य

अवश्य पालते हैं। बाकी, यह बनावट है सारी। फिर वापस गुरु हमें कहते हैं, 'आपमें शक्ति नहीं है, आप पालते नहीं हो।' अरे, मेरी शक्ति किसलिए तू ढूँढ रहा है? तेरी शक्ति चाहिए। इन सब से मैंने कह दिया है, 'मेरी शक्ति चाहिए। तुम्हारी शक्ति की ज़रूरत नहीं है।' और बाहर सब तरफ तो वैसा ही है! जहाँ गुरु बन बैठा हो, उसे उसकी खुद की शक्ति चाहिए। पर यह तो लोगों पर उड़ेल देते हैं कि, 'आप कुछ नहीं करते!' अरे भाई, कर रहा होता तो तेरे यहाँ मैं क्या करने आता फिर? तेरे यहाँ किसलिए आ टकराता? पर यह तो कलियुग के लोगों को समझ नहीं होने से यह सब तूफ़ान चल रहा है। नहीं तो मेरे जैसा जवाब दे देगा न? गुरु यदि पवित्र हों तो हमें अवश्य हो ही जाता और नहीं होता तो गुरुओं में ही पोल है। हाँ, एक्ज़ेक्ट पोल है, यह मैं आपको बता दूँ!

पोल का अर्थ मैं क्या कहना चाहता हूँ? कि गुरु अकेले में बीड़ी पीते हों तो आपकी बीड़ी नहीं छूटेगी। नहीं तो क्यों नहीं होगा? एक्ज़ेक्टली हो ही जाना चाहिए। सभी गुरुओं का पहले रिवाज ही यही था। गुरु अर्थात् क्या? कि खुद सभी चीज़ों का पालन करे, इसलिए सामने वाले से सहज ही पाल लिया जाता है। यह आपकी समझ में आता है क्या?

प्रश्नकर्ता : गुरु पालन करें, तब अपने से पालन हो ही जाता है, वह मेरे दिमाग़ में नहीं उतरता है।

दादाश्री : तब तो उससे तो किताबें अच्छी। किताबें ऐसा ही कहती हैं न? 'ऐसा करो, वैसा करो, फलाँ करो।' तो उन जीवित गुरु से तो किताबें अच्छी। जीवित के तो फिर पैर छूने पड़ते हैं ऐसे!

प्रश्नकर्ता : उससे नम्रता का अभ्यास तो होता है न?

दादाश्री : उस नम्रता का क्या करना है? जहाँ हमें कुछ मिले नहीं, अपनी पूरी ज़िंदगी वहीं के वहीं निकल जाए तो भी अपना कपड़ा भीगे नहीं तो वह पानी फिर किस काम का? इसलिए यह सारा यूज़लेस (व्यर्थ), वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी (समय और शक्ति का दुर्व्यय है)!

आपकी समझ में नहीं आया? मैं आपसे कहूँ कि 'यह आप छोड़ दो' और आपसे वह नहीं छूटे तो समझना कि मुझमें दोष है। आपसे नहीं छूटे तो आपको मुझमें दोष निकालना चाहिए। आपके सभी प्रयत्न करने के बाद भी नहीं छूटे तो उसका कारण क्या है? मुझमें दोष है, उस कारण से ही। हाँ, उसका कारण यह कि कहने वाले में दोष होना ही चाहिए।

'आप ऐसा करो, यह करो' ऐसा कोई वचनबल वाला कहे तो चलेगा। यह तो वचनबल ही नहीं है, इसलिए शिष्य की गाड़ी आगे चलती ही नहीं। यह तो एक प्रकार की कहने की बुरी आदत पड़ी हुई होती है।

वह सामर्थ्य ही सबकुछ सँभाल ले

सर्वत्र नियम ऐसा ही होना चाहिए कि गुरु को ही कर देना चाहिए। गुरु के पास लोग किसलिए जाते हैं? यह तो गुरु से होता नहीं, इसलिए गुरुओं ने सिर पर ठोक दिया कि 'तुम कुछ करो, तुम नहीं करते, तुम नहीं करते।' इसलिए फिर अपने लोग वैसा मान बैठे। गुरु उलाहना देते हैं और लोग सुनते भी हैं फिर! अरे, ऐसे उलाहने सुनने नहीं होते। पर ये गुरु खा–पीकर पीछे पड़े हैं, तो शिष्यों को डाँटते ही रहते हैं कि, 'तुम कुछ करते नहीं, तुम यह नहीं करते। हम तुमसे कहते हैं कि तुम ऐसा कर लाओ।'

साधक की दशा तो कमज़ोर होती है। सभी साधक कुछ ऐसे मज़बूत नहीं होते। अब कमज़ोर व्यक्ति तो और क्या बताएगा? कमज़ोरी ही बताएगा। आपको तो ऐसा कहना है कि, 'साहब, आप जैसा हमसे चाहते हैं, वैसा ही आप हमें बना दीजिए। आप इतने बड़े गुरु पद पर बैठे हैं और फिर मुझे करके लाने को कहते हैं? पर मैं तो अपंग हूँ, मैं तो पंगु हूँ, आपको मुझे खड़ा कर देना है। आपको मुझे कंधे पर उठा लेना चाहिए या मुझे आपको कंधे पर उठाना चाहिए?' ऐसा गुरु से हमें नहीं कह देना चाहिए? पर अपने देश के लोग इतने नरम स्वभाव के हैं, इसलिए गुरु कहे तो कहेंगे, 'हाँ, तब साहब, कल कर लाऊँगा।' अरे,

ऐसे साफ-साफ कह दे न! ऐसा नहीं बोल सकते? क्यों नहीं बोलते? यह मैं किसके पक्ष में बोल रहा हूँ? मैं किसके पक्ष की बात कर रहा हूँ?

प्रश्नकर्ता : हमारे पक्ष की बात है यह।

दादाश्री : हाँ, आपको ऐसा कहना चाहिए कि 'साहब आप तो बलवान हैं, और मैं तो निर्बल हूँ। यह तो मैं आप जो कहें वह करने को तैयार हूँ, वर्ना मेरा सामर्थ्य ही नहीं है, इसलिए आप ही कर दीजिए और यदि नहीं करते हैं तो मैं दूसरी दुकान पर जाऊँ। आपमें बरकत हो तो कह दीजिए, और बरकत नहीं हो तो कह दीजिए, तो मैं दूसरी दुकान पर जाऊँ। आपसे असंभव हो तो मैं दूसरी जगह पर जाऊँ, दूसरे गुरु बनाऊँ।'

अर्थात्, गुरु किसे कहेंगे? कुछ भी करने को न कहें, वे गुरु! यह तो रास्ते चलते गुरु बन बैठे हैं। ऊपर से कहेंगे, 'पंगुम् लंघयते गिरीम्'। अरे, ऐसा कहते हैं। पर हमें तो आप कहते हैं कि 'तू चल।' आप ही तो मुझे कहते हैं कि, 'मुझे तेरे कंधों पर बिठा दे।' गुरु क्या कहते हैं? 'मुझे तेरे कंधों पर बिठा दे।' 'अरे, मैं पंगु और आप मेरे कंधों पर बैठने को कहते हो?' यह विरोधाभास नहीं कहलाएगा? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ यह हुआ कि शिष्य को कुछ भी मेहनत नहीं करनी है, मेहनत गुरु को ही करनी है सारी?

दादाश्री : हाँ, गुरु को ही करनी है। आपको यदि करना हो तो आपको ऐसा कहना चाहिए, 'तब साहब, आपको क्या करना है? कहिए। यदि आपको कुछ नहीं करना है और यह हुकम ही करना हो, तो इससे तो मैं अपने घर पर मेरी वाइफ का हुकम मानूँगा। वाइफ भी पुस्तक में देखकर कहेगी! आप भी पुस्तक में देखकर, शास्त्र देखकर कहते है, तब वह भी पुस्तक देखकर कहेगी। 'ऐसा करो', कहने से नहीं चलेगा। आप कुछ करना शुरू कीजिए। मुझसे नहीं हो, वह आप कीजिए, और आपसे नहीं हो वह हम करेंगे। ऐसे बँटवारा कर लीजिए।' तब उन गुरुओं ने क्या कहा? 'हम किसलिए करें?' तब हम कहें, 'तब आपके पास शुक्रवार बदलेगा नहीं और शनिवार मेरा आएगा नहीं।' ऐसा कह देना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : पर सामने वाला व्यक्ति ठीक नहीं हो तो क्या?

दादाश्री : सामने वाले व्यक्ति को देखने की ज़रूरत नहीं है। गुरु अच्छे होने चाहिए। व्यक्ति तो है ही वैसा, समर्थ नहीं है बेचारा। वह तो ऐसा ही कहता है न कि, 'साहब, मैं समर्थ नहीं हूँ, इसीलिए आपके पास आया हूँ। मुझे 'करना' होता होगा?' तब वे कहें, 'नहीं, तुझे करना पड़ेगा।' तो वे गुरु ही नहीं हैं। यदि मुझे करना पड़ता हो तो आपकी शरण में किसलिए आऊँ? आपके जैसे समर्थ को किसलिए ढूँढ निकालता? इतना ज़रा आप सोचिए तो सही! आप समर्थ हैं और मैं तो कमज़ोर ही हूँ। मुझसे होता ही नहीं, इसलिए तो आपकी शरण में आया, और मुझमें यदि कर्त्तापन रहने वाला हो तो आप कैसे हैं? कमज़ोर ही कहलाएँगे न! आप समर्थ कहलाएँगे ही किस तरह? क्योंकि समर्थ तो सबकुछ कर सकते हैं।

यह तो गुरु में बरकत है नहीं, इसलिए ही सामने वाले व्यक्ति को बोझा लगता है। गुरुओं में बरकत नहीं है, तभी सामने वाले व्यक्ति का दोष निकालते हैं। पति में बरकत नहीं हो तो पत्नी का दोष निकालता है। कमज़ोर पति, पत्नी पर शूरवीरता दिखाता है, ऐसी कहावत चलती है संसार में। उसी तरह ये गुरु भी कमज़ोर हैं न, इसलिए शिष्य पर ज़ोर दिखाते हैं और शिष्य का तेल निकाल देते हैं कि, 'आपसे कुछ होता नहीं है।' तब आप क्या करने के लिए यहाँ पर बड़े गुरु होकर आए हैं फिर? अरे, बिना बात के शिष्यों को किसलिए डाँटते हैं? बेचारे वे दुःखी हैं, इसीलिए तो वे आपके पास आए हैं। तब फिर आप डाँटते हैं ऊपर से। घर पर पत्नी डाँटे और यहाँ आप डाँटे, तब उसका अंत कब आएगा फिर?

गुरु तो वे कि जो शिष्य को डाँटें नहीं, शिष्य की रक्षा करें, शिष्य को आसरा दें। इस कलियुग के गुरुओं को गुरु ही किस तरह कहा जाए? पूरा दिन शिष्य को डाँटते रहते हैं। वह सच्चा रास्ता ही नहीं है न!

भगवान के समय में कोई ऐसा नहीं कहता था कि 'इतना करना पड़ेगा।' जबकि ये सभी तो कहेंगे, 'इतना तो करना पड़ेगा।' तब शिष्य

क्या कहेगा? 'साहब, कुछ होता नहीं है, कुछ भी होता नहीं है।' अरे, तब तो पत्थर बन जाएगा। क्योंकि जैसा चिंतन करे वैसा हो जाता है। 'कुछ भी नहीं होता' ऐसा चिंतन करे तो वैसा ही हो जाएगा या नहीं हो जाएगा? वह तो लोगों को समझ नहीं है इसलिए चलता है गोल-माल सारा। कभी भी, जो गुरु करके नहीं देते, वे गुरु सिर पर बोझ हैं। आपको तो डॉक्टर को नहीं कहना पड़ेगा कि, 'मुझे कोई दर्द है, वह मुझे मालूम नहीं है। अपने आप कुछ हो गया है। आप मुझे दर्द से मुक्त कर दीजिए' ऐसा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, कहना चाहिए।

दादाश्री : तब गुरु को ही कर देना चाहिए। सारा वही सिखा देते हैं। फिर पढ़ने को कहते हैं कि, 'इतना पढ़कर आना', लेकिन सिखा सभी देते हैं। यह तो पत्नी-बच्चे वाले, नौकरी कर रहे हैं, वे कब कर पाएँगे बेचारे? जबकि गुरु में तो बहुत शक्ति होती है, अपार शक्ति होती है, वे सबकुछ कर सकते हैं। गुरु को कहना चाहिए कि, 'तुझमें समझ नहीं है, पर मैं हूँ ना! मैं बैठा हूँ न! तुझे घबराना नहीं है। यदि तुझे समझ में नहीं आता तो तू मेरे पास से सब ले जा।' और मैंने भी इन सब से कहा है कि, 'आपको कुछ भी करना नहीं है। मुझे करना है। आपमें जो कमज़ोरियाँ हों, वे सब मुझे निकालनी हैं।'

दादा ने लुटाया है ज्ञान गहन

मैं तो क्या कहता हूँ कि मेरे साथ चलो सभी। तब कहते हैं, 'नहीं, आप एक कदम आगे।' तब मैं कहता हूँ कि एक कदम आगे, पर मेरे साथ चलो। मैं आपको शिष्य नहीं बनाना चाहता हूँ। मैं आपको भगवान बनाना चाहता हूँ। आप हो ही भगवान, आपका वह पद आपको देना चाहता हूँ। मैं कहता हूँ कि तू मेरे जैसा बन जा बिल्कुल! तू तेजवान हो जा। मुझे जैसी इच्छा है, वैसा तू हो जा न!

मैंने तो अपने पास कुछ रखा नहीं है, सबकुछ आपको दे दिया है। मैंने कुछ भी जेब में नहीं रख छोड़ा है। जो था वह सबकुछ ही दे दिया है, सर्वस्व दे दिया है! पूर्ण दशा का दिया हुआ है सारा। हमें तो आपके पास से कुछ भी चाहिए नहीं। हम तो देने आए हैं, सारा

हमारा ज्ञान देने आए हैं। इसलिए ही यह सब ओपन किया है। इसलिए लिखा है न, 'दादा ही भोले हैं, लुटा दिया है ज्ञान गहन।'

ज्ञान कोई लुटाता ही नहीं न! अरे, इसे लुटाने दो न! तो लोगों को शांति हो, ठंडक हो जाए। यहाँ मेरे पास रखकर मैं क्या करूँ? उसे दबाकर सो जाऊँ?

और नियम ऐसा है कि इस दुनिया में हर एक चीज़ जो दी जाती है, वह कम होती है, और सिर्फ ज्ञान ही देने से बढ़ता है! वैसा स्वभाव है। सिर्फ ज्ञान ही! दूसरा कुछ भी नहीं। दूसरा सबकुछ तो घटता है। मुझे एक व्यक्ति कहता है कि, 'आप जितना जानते हैं उतना क्यों कह देते हैं? थोड़ा कुछ डिब्बी में नहीं रखते?' मैंने कहा, 'अरे, देने से तो बढ़ता है! मेरा बढ़ता है और उसका भी बढ़ता जाता है, तो क्या नुकसान होता है मेरा? मुझे ज्ञान डिब्बी में रखकर गुरु नहीं बन बैठना है कि यह मेरे पैर दबाता रहे। वह तो फिर अंग्रेज़ों के जैसा हाल होगा, कि उन्होंने सभी ज्ञान डिब्बी में रखे थे। 'Know-How' के भी उन लोगों ने पैसे लिए। उससे ही तो यह सारा ज्ञान पानी में डूब जाएगा। अपने लोग देते रहते थे, खुले हाथों से देते ही रहते थे। आयुर्वेद का ज्ञान देते थे, फिर दूसरा ज्योतिषविद्या का ज्ञान देते थे, अध्यात्मज्ञान देते थे, सब खुले हाथों से देते थे।

और यह कोई छुपाकर रखा हुआ ज्ञान नहीं है। यहाँ व्यवहार में तो गुरु गाँठ में बाँधकर रखते हैं थोड़ा। कहेंगे, 'शिष्य टेढ़ा है वह चढ़ बैठेगा। विरोध करेगा तब मैं क्या करूँगा?' क्योंकि उस गुरु को व्यवहार का सुख चाहिए। खाने-पीने का, दूसरा सबकुछ चाहिए। पैर दुखते हों तो शिष्य पैर दबा देते हैं। वह शिष्य यदि उनके जैसा हो जाएगा तो फिर वह पैर नहीं दबाएगा, तो क्या होगा? इसलिए वह थोड़ी चाबियाँ अपने पास रहने देते हैं।

इसलिए गुरुओं का मत ऐसा होता है कि मुझे दस प्रतिशत अपने पास अमानत रखना चाहिए और फिर बाकी का देना चाहिए। उनके पास सेवन्टी परसेन्ट होता है, उसमें से दस प्रतिशत अमानत

रखते हैं। जबकि मेरे पास पंचानवे प्रतिशत है, वह सारा ही आपको दे देता हूँ। आपको अनुकूल आया तो अनुकूल, नहीं तो जुलाब हो जाएगा। परंतु उससे कुछ फायदा तो होगा न!

अर्थात् अभी गुरु ऐसे घुस गए हैं कि भीतर डिब्बी में रखकर फिर दूसरा देते हैं। इसलिए शिष्य समझता है कि, 'अभी हमें नहीं मिलता है, धीरे-धीरे मिलेगा।' फिर गुरु धीरे-धीरे देते हैं। पर दे दे न यहीं से, ताकि इसका सब ठीक हो जाए। कोई देता ही नहीं न! लालची लोग देते होंगे? संसार का जिसे लालच है, वह मनुष्य जितना जानता है उतना पूरा-पूरा ज्ञान साफ-साफ दे नहीं सकता। लालच के कारण रहने देता है अपने पास।

प्रश्नकर्ता : परंतु उसे शिष्य मिले हैं, वे लालची ही मिले हैं न? उन्हें सबकुछ ले लेना है न?

दादाश्री : शिष्य तो लालची ही है। मेरा कहना है कि शिष्य तो लालची ही होते हैं। उसे तो बेचारे को इच्छा है ही कि, 'मुझे यह ज्ञान मिल जाए तो अच्छा।' वैसा लालच होता ही है। परंतु ये गुरु भी लालची? वैसा कैसे पुसाए? इसलिए खुद एडवान्स होते नहीं, इसलिए खुद आगे बढ़ते ही नहीं और शिष्यों को भी मुश्किल में डाल देते हैं। तो ऐसा हो गया है इस हिन्दुस्तान में अभी!

और ऐसे ठिकाने पर लगाया

गुरु अच्छे हों तो दूसरी सब झंझट नहीं होती। इस काल में सच्चे गुरु मिलने, व्यापारी नहीं हों वैसे गुरु का मिलना बहुत बड़ा पुण्य कहलाता है। नहीं तो गुरु क्या करते हैं? शिष्य के पास से उसकी कमज़ोरियाँ जान लेते हैं और फिर कमज़ोरियों की लगाम पकड़ते हैं और परेशान कर देते हैं लोगों को! कमज़ोरी तो वह बेचारा गुरु के सामने ज़ाहिर न करे तो कहाँ करेगा?

प्रश्नकर्ता : अभी कुछ गुरु हैं, जो सिर्फ नाम के गुरु हैं, पर वे ऐसे तो वास्तव में लोगों का शोषण ही कर रहे होते हैं।

दादाश्री : और एकाध–दो गुरु सच्चे हों, सीधे हों, तब उनमें योग्यता नहीं होती। प्रपंची गुरु तो बहुत होशियार होते हैं और तरह–तरह के ऐसे भेष बनाते हैं।

प्रश्नकर्ता : कोई भी मनुष्य मुक्त होने के लिए गुरु का आश्रय लेता है, परंतु फिर उस गुरु की पकड़ में से मुक्त नहीं हो सकता। इसलिए गुरु से भी मुक्त होने की ज़रूरत है, ऐसा नहीं लगता?

दादाश्री : हाँ, मुझे सूरत शहर में एक सेठ मिले थे। वे मुझे कहने लगे, 'साहब, मुझे बचाइए!' मैंने कहा, 'क्या है? तुझे कोई नुकसान हो गया है?' तब उन्होंने कहा, 'मेरे गुरु ने ऐसा कहा है कि 'मैं तुझे मटियामेट कर दूँगा'। यदि वे मुझे वैसा कर देंगे तो मैं क्या करूँगा? मेरा क्या होगा अब?' फिर मैंने पूछा, 'तेरा उनके साथ ऐसा तो क्या व्यवहार हुआ है कि इतना भारी शब्द कहा तुझे? कुछ लेना–देना है उनके साथ? कोई लेना–देना हो, तो वैसा बोलेगा न?' तब उन्होंने कहा, 'मेरे गुरु कहते हैं कि, 'पचास हज़ार रुपये भेज दे नहीं तो मैं तुझे मटियामेट कर दूँगा।' 'अरे, पैसों का व्यापार किया तूने उसके साथ? तूने उधार लिया था?' तब उन्होंने कहा, 'नहीं, उधार नहीं। पर वे जब–जब भी कहें कि पच्चीस हज़ार दे जा, नहीं तो तेरा बिगड़ेगा वह तू जाने, इसलिए मैं डर के मारे उन्हें रुपये दे आता हूँ। इस तरह आज तक सवा लाख रुपये दे चुका हूँ। अब और पचास हज़ार रुपये मेरे पास नहीं हैं, इसलिए मैं कहाँ से लाकर दूँ? इसलिए अब उन्होंने कहलवाया है कि तुझे पूरा बरबाद कर दूँगा।'

तब मैंने कहा, 'भाई, चल, तुझे हम रक्षण देंगे। तू बरबाद नहीं होगा। तेरे गुरु जो भी करेंगे न, उसके लिए हम तेरा सहारा बनेंगे, तुझे बरबाद नहीं होने देंगे। पर अब वहाँ पर कुछ भी भिजवाना मत, प्रेम आए तो भेजना। तुझे प्रेम आए, उल्लास आए तो भेजना। परंतु भय के मारे मत भेजना। नहीं तो वह तो अधिक उछलेगा। तू डरना मत। तेरे गुरु का उल्टा चिंतवन मत करना। क्योंकि तेरी भूल से ये गुरु लेकर गए हैं। कुछ उनकी भूल से लेकर नहीं गए हैं ये।'

उसकी खुद की भूल से ही ले गए हैं न! उसे लालच होगा कुछ

तभी न! कोई लालच होगा तभी ये गुरु बनाए थे न! तभी पैसे देगा न! यानी लालच से ही ये ठगे गए हैं और ये सारे लोग हाथ में आया हुआ फिर छोड़ते नहीं हैं। दूषमकाल के लोग, उन्हें खुद की अधोगति होगी या क्या होगा, उसकी कुछ पड़ी ही नहीं है। शिकार हाथ में आना चाहिए। पर वे तो क्या कहते हैं? 'हमारे भगत हैं।' वैसा कहते हैं न? 'शिकार' नहीं कहते उतना अच्छा है और वे शिकारी लोग तो 'शिकार' कहते हैं।

फिर मैंने उसे कहा, 'तूने गुरु के नाम पर कुछ किया था?' तब उसने कहा, 'हाँ, उनका जो फोटो पूजता था, वह फिर तापी नदी में डाल आया। ऐसे बहुत परेशान किया, इसलिए मुझे चिढ़ हो गई। इसलिए डाल आया।' 'अरे पर तूने उसे पूजा किसलिए? पूजा की तो फिर तापी में किसलिए डाल आया? गुरु ने तुझे ऐसा नहीं कहा था कि तू पूजकर तापी में डाल आना। नहीं तो पूजता ही नहीं पहले से। पूजा है इसलिए जोखिमदारी तेरी हुई। यह तो तूने गलत किया। कल तक भजना कर रहा था और दूसरे दिन डाल दिया पानी में! भजने वाला तू और उखाड़ने वाला भी तू। खुद ही स्वयं भजने वाला और खुद ही उखाड़ने वाला! यह गुनाह है या नहीं? तो फिर भजता किसलिए था? यदि उखाड़ना हुआ तो विधिपूर्वक उखाड़ो। ऐसा नहीं चलेगा। क्योंकि जिस फोटो की आज तक पूजा कर रहा था, उसे कल नदी में विसर्जित कर दें, तो वह हिंसा हुई कहलाएगी।' हम समझें कि यह भगवान का फोटो है और फिर हम यदि डूबो दें, तो अपनी भूल है। नहीं जानते हों, अनजान हों तो हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : गुरु ने ऐसा किया तभी तो उसे फेंक आना पड़ा न? गुरु निमित्त बने न उसमें? वे दोषित ठहरे न?

दादाश्री : गुरु चाहे सो करें, पर आपसे भूल नहीं होनी चाहिए। आपकी भूल के कर्म आपको ही लगेंगे, उनकी भूल के कर्म उन्हें लगेंगे। आप मेरा अपमान कर जाओ, गालियाँ दो, तो मैं डाँटूँ-करूँ तो मुझे कर्म लगेगा। मुझे तो ऐसा करने की ज़रूरत ही कहाँ है? आप तो कर्म बाँधोगे। आप श्रीमंत हो, शक्ति वाले हो, तो बाँधो। हममें वैसी शक्ति भी नहीं और हमारी श्रीमंताई भी नहीं है वैसी!

वैसी शक्ति हो तो कर्म बाँधेंगे न! इसलिए हमसे ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह कुत्ता काटे तो क्या हम भी काटें? वह तो काटेगा ही!

प्रश्नकर्ता : ऐसे गुरु की फोटो नदी में डाल दें तो पाप किस तरह लगेगा?

दादाश्री : ऐसा नहीं बोलते, हमें ऐसा नहीं बोलना चाहिए। उन गुरु में भगवान रहे हुए हैं। वे गुरु भले खराब हैं, परंतु भगवान रहे हुए हैं न! हमें उन्हें निर्दोष ही देखना चाहिए। अपने पूर्व के कोई पाप होंगे इसलिए फँसे, और ऐसे गुरु मिल आए। नहीं तो मिलते ही नहीं न! पिछले जन्म का ऋणानुबंध, इसलिए ये मिलते हैं न! नहीं तो कहाँ से मिलते? दूसरे लोगों को नहीं मिले और हमारे हिस्से में ही कहाँ से आए?

तब फिर मैंने उसे विधि कर दी और कहा कि, 'गुरु के नाम पर बुरा मत बोलना, उनके बारे में बुरा मत सोचना, गुरु के नाम पर बैर मत रखना।' उसे मन से प्रतिक्रमण करवाए, सब सिखाया। उस व्यक्ति को सारा रास्ता कर दिया, और नदी में फोटो डाल आया, उसकी किस तरह विधि करनी, वह मैंने उसे बताया। फिर उसे ठीक हो गया।

फिर बारह महीनों तक नहीं गया, इसलिए गुरु समझ गए कि किसी ने इसे हमसे अलग कर दिया है। तब बारह महीनों के बाद गुरु ने पत्र लिखा कि, 'आप आओ। आपको किसी भी तरह से परेशान नहीं करूँगा।' वह जो आटा खाने की जो आदत है, वह उसे मारती है, लालच! पर अब वह नहीं जाता। क्योंकि यह मछली एक बार पकड़ी जाने के बाद छूट जाए, फिर वापस जाल में फँसती है क्या? जो लालची हों उसे गुरु नहीं बनाने चाहिए। जो लालची नहीं हो और स्वतंत्र हो, उन्हें गुरु बनाने चाहिए। गुरु कहें कि, 'चले जाओ' तब कहें कि, 'साहब आपकी मरज़ी। हमारा घर है ही। नहीं तो मेरी वाइफ भी गुरु ही है मेरी!'

नहीं तो पत्नी को भी गुरु बनाएँ

गुरु करना ठीक नहीं लगे और गुरु के बिना चैन नहीं पड़े तो पत्नी से कहना, तू उल्टी घूमकर बैठ जा। मैं तुझे गुरु की तरह स्वीकार करूँगा।' मुँह मत देखना, हाँ! उल्टी घूम जा, कहना! जीवित मूर्ति है न!

हाँ, अर्थात् पत्नी को गुरु बनाना। आपको क्या करना है? विवाह नहीं किया अभी तक?

प्रश्नकर्ता : विवाह किया है न!

दादाश्री : तब उसे गुरु बनाना। वह अपने घर की तो है। घी ढुल गया, तो भी खिचड़ी में ही!

प्रश्नकर्ता : उससे क्या फायदा? ज्ञानी चाहिए न?

दादाश्री : तब अभी बाहर के गुरु भी क्या देने वाले हैं? बाकी पत्नी को तो सभी ने गुरु बनाया ही होता है। वह तो मुँह से कोई कहता नहीं, उतना ही!

प्रश्नकर्ता : पर सब के बीच बोल नहीं सकते न!

दादाश्री : बोलते नहीं हैं, पर मैं जानता हूँ सभीको। मैं कहता भी हूँ कि अभी तक 'गुरु' नहीं आए, तब तक यह सयाना दिखता है। उसे आने तो दो! उसमें हर्ज भी नहीं है। पर अपनी अक्ल ऐसी होनी चाहिए कि उसका लाभ नहीं उठाए। हमारे लिए पकौड़ियाँ बना दे, जलेबी बना दे, लड्डू बना दे, फिर उसे गुरु बनाने में क्या हर्ज है? यानी बाहर के किसी गुरु के प्रति भाव नहीं होता हो तो पत्नी से कहें, 'तू मेरी गुरु है, मैं तेरा गुरु, चल आ जा!' तो उल्लास तो आएगा न! उसे भी उल्लास आएगा और हमें भी उल्लास आएगा। जिसे देखकर उल्लास नहीं आए उसे गुरु बनाएँ, उसके बजाय पत्नी को गुरु बनाएँ तो क्या बुरा है? क्योंकि भीतर भगवान बैठे हुए हैं! फिर चाहे पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़, उसकी वहाँ क़ीमत ही नहीं है!

यानी अच्छे गुरु नहीं मिलें, तो अंत में पत्नी को भी गुरु बनाना! क्योंकि गुरु को पूछकर चलें तो अच्छा रहता है। पूछे ही नहीं, तो फिर वह भटक मरेगा। 'आप क्या कहती हो? आप कहो उस अनुसार करें' ऐसे हम कहें। पत्नी को पति में गुरु का स्थापन करना चाहिए कि, 'आप क्या कहते हैं, उस अनुसार मैं करूँ।' ये दूसरे गुरु - प्रपंची गुरु बनाएँ, उसके बदले घर में प्रपंच तो नहीं! इसलिए पत्नी को गुरु बनाकर भी स्थापन करना चाहिए। परंतु एक गुरु तो चाहिए न!

गुरु मिले फिर भी?

प्रश्नकर्ता : गुरुदेव के तौर पर मैंने एक संत को स्वीकार किया है। तो मैं जप करने के लिए उनका नामस्मरण करने के बदले दूसरे का नामस्मरण जप की तरह स्वीकार कर सकता हूँ?

दादाश्री : आपको यदि कोई अधूरापन लगता हो तो दूसरे का नामस्मरण करना। परंतु अधूरापन रहता है कोई? नहीं। यानी क्रोध-मान-माया-लोभ रहते नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो भीतर सबकुछ होता है।

दादाश्री : चिंता?

प्रश्नकर्ता : चिंता रहती है, परंतु कम!

दादाश्री : पर यदि चिंता हो तो फिर, जिनका नाम लेने से चिंता हो उनका नाम लेने का अर्थ ही क्या है? मीनिंगलेस! क्रोध-मान-माया-लोभ होते हों, तो वह नाम लेने का क्या अर्थ? ऐसे तो यह क्रोध-मान-माया-लोभ औरों को भी होते हैं और हमें भी होते हैं, यानी आपका काम पूरा नहीं हुआ है।

तो फिर अब दुकान बदलो। कब तक एक ही दुकान में पड़े रहें? आपको पड़े रहना हो तो पड़े रहना, वर्ना यह सब तो मैं आपको सलाह दे रहा हूँ। आपका काम हो चुका हो, तो वहाँ पर हर्ज नहीं है। उस एक ही जगह पर रहे, तो दूसरी जगह पर दख़ल करने की ज़रूरत नहीं है।

मतभेद पड़ता हो, तो फिर गुरुदेव ने क्या किया? गुरुदेव वे कि सभी दुःख टाल दें।

प्रश्नकर्ता : उन गुरु की बात ठीक है, पर यह तो मैंने स्वयं की अंतःस्फूरणा से मैंने गुरु को स्वीकार किया था।

दादाश्री : वह ठीक है। उसमें हर्ज नहीं है। पर हमने बारह वर्ष तक दवाई पी और भीतर रोग नहीं मिटा, तब इन डॉक्टरों और

दवाईयों का क्या करना है?, रखे उसके घर में! अनंत जन्मों तक यही किया है और भटकते रहे हैं!

प्रश्नकर्ता : परंतु उसमें गुरुदेव की भूल निकालनी या मेरी खुद की भूल?

दादाश्री : गुरु की भूल है! अभी मेरे पास साठ हज़ार लोग हैं। पर उनमें से किसी को दुःख हो, तो मेरी भूल है। उनकी क्या भूल बेचारों की? वे तो दुःखी हैं इसीलिए मेरे पास आए हैं। यदि सुखी नहीं हो पाएँ तो मेरी भूल है।

यह तो गुरुदेव ने खुद जबरदस्ती दिमाग़ में बिठा दिया और खुद से दूसरे को सुखी नहीं किया जा सकता इसलिए कहते हैं, 'आप टेढ़े हो, इतने टेढ़े हो इसलिए ऐसा होता है।' वकील अपने मुवक्किल को क्या कहता है कि, 'तेरा करम फूटा है, इसलिए ऐसा उल्टा हुआ।'

वर्ना, गुरु तो कैसे होने चाहिए? सर्वस्व दुःख ले लें! अन्य तो गुरु कहलाते होंगे?

प्रश्नकर्ता : पर मुझे मेरी प्रकृति का दोष लगता है।

दादाश्री : प्रकृति का दोष नहीं है। गुरु तो, चाहे जैसी आपकी प्रकृति हो, परंतु ले लेते हैं। ये गुरु बन बैठते हैं, वे यों ही बन बैठते हैं? लोग तो चाहे जिस दुकान में बैठकर गिड़गिड़ाते रहते हैं। ऐसा नहीं देखते कि क्रोध-मान-माया-लोभ की ठंड लगती रहती है। वह किस काम का फिर? परंतु अपने लोगों को यही बुरी आदत है। जिसकी दुकान में डेरा डाला, पर ऐसा नहीं देखता कि क्रोध-मान-माया-लोभ गए? कमज़ोरियाँ गईं? मतभेद कम हुए? कुछ चिंता कम हुई? संताप कम हुआ? आधि-व्याधि-*उपाधि* कम हुई? तब कहें, 'कुछ भी कम नहीं हुआ।' अरे, तब छोड़ न, इस दुकान में से निकाल दे न! पर ऐसा समझ में नहीं आता?

यह तो गुरुओं की भूल है सारी। यह कोई गुरु (छोड़ने के लिए) हाँ नहीं कहते। सच्ची बात कहने के लिए मैं आया हूँ। मुझे किसी के साथ भेद नहीं है या किसी के साथ कोई झंझट नहीं है!

बाकी, कोई गुरु हा नहीं कहते। क्योंकि उनकी ध्वजा ठीक नहीं है। गुरु बन बैठे हैं, चढ़ बैठे हैं पब्लिक पर!

क्लेश मिटाएँ, वे सच्चे गुरु

गुरु वे कि हमें ऐसा कुछ समझाएँ कि हमें क्लेश नहीं हो। पूरे महीने में भी क्लेश नहीं हो, इस तरह समझा दें, वे गुरु कहलाते हैं। हमें यदि क्लेश होता हो तो समझना चाहिए कि गुरु नहीं मिले हैं। *कढ़ापा-अजंपा* हो तो गुरु बनाने का अर्थ ही क्या है फिर? गुरु से कह देना चाहिए कि, 'साहब, आपका *कढ़ापा-अजंपा* गया नहीं लगता है। नहीं तो मेरा *कढ़ापा-अजंपा* क्यों नहीं जाएगा? मेरा जाए, ऐसा हो, तो ही मैं आपके पास फिर से आऊँ। नहीं तो 'राम राम, जय सच्चिदानंद' कह देना। ऐसी दुकानें घूम-घूमकर तो अभी तक अनंत जन्मों से भटका है! कुछ नहीं हुआ हो तो गुरु से कह देना कि 'साहब, आप बहुत बड़े व्यक्ति मिलें हैं, पर हमें कुछ नहीं होता है। इसलिए यदि उपाय हो तो करके देखिए, नहीं तो हम जाएँ अब।' ऐसा साफ-साफ कहना नहीं चाहिए? हमलोग दुकान में जाएँ तो भी कहते हैं कि, 'भाई रेशमी माल नहीं हो, तो हमें खादी नहीं चाहिए।'

गुरु तो, हमने जिनकी समझपूर्वक पूजा की हो, अपना सारा मालिकीभाव सौंप दिया हो, तब वे गुरु कहलाते हैं। वर्ना गुरु कैसे? अपना अँधेरा दूर किया हो, उनके दिखाए हुए रास्ते पर चलें तो क्रोध-मान-माया-लोभ कम होते जाएँगे, मतभेद कम होते जाएँगे, चिंता-क्लेश नहीं होंगे बिल्कुल भी। क्लेश हो तब तो गुरु हैं ही नहीं मुए, वे गलत हैं सारे!

नहीं गँवाना एक ही गुरु के लिए मनुष्य भव

लोग तो एक गुरु बनाकर रुके हुए हैं, हमें नहीं रुकना हैं। समाधान नहीं हो, वहाँ गुरु बदल ही देना। जहाँ पर अपने मन का समाधान बढ़े, असंतोष नहीं हो, जहाँ पर रुकने का मन हो वहाँ पर रुक जाना। बाकी ये लोग रुके हुए हैं, ऐसा मानकर रुकना नहीं। क्योंकि उसमें तो अनंत जन्म बिगड़ गए हैं। मनुष्यत्व बार-बार नहीं आता और

वहाँ पर रुककर बैठे रहें तो अपना जन्म बेकार जाएगा। ऐसे करते-करते, ढूँढते-ढूँढते कभी मिल जाएँगे। मिल जाएँगे या नहीं मिलेंगे? हमें मुख्य वस्तु ढूँढनी है। ढूँढने वाले को मिल जाती है। जिसे ढूँढना नहीं है, और 'ये हमारे मित्र जाते हैं वहाँ जाऊँगा' वह बिगाड़ दिया!

व्यवहार में गुरु : निश्चय में ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : हमने जिन्हें गुरु की तरह स्वीकार किया है, वे ज्ञानी नहीं हैं। ज्ञानी तो आप कहलाते हैं। तो गुरु और ज्ञानी दोनों को सँभालें या फिर गुरु को भूल जाएँ?

दादाश्री : हम 'गुरु रहने दो' ऐसा कहते हैं। गुरु तो चाहिए ही सब जगह। व्यावहारिक गुरु हों, वे तो अपने हितेच्छु कहलाते हैं, वे हमारा हित (श्रेय) देखते हैं। व्यवहार में कोई अड़चन आए तो उन्हें पूछने जाना पड़ता है। व्यवहारिक गुरु तो चाहिए ही हमें। उन्हें हमें हटाना नहीं है। ज्ञानी पुरुष तो मुक्ति का साधन बताते हैं, व्यवहार में कहीं दख़ल नहीं करते। अर्थात् ज्ञानी पुरुष तो मोक्ष के लिए हैं। आपके गुरु का और उनका कुछ लेना-देना नहीं है।

पहले वाले गुरु छोड़ नहीं देने हैं। गुरु तो रहने ही देने हैं। गुरु के बिना तो व्यवहार किस तरह चलाओगे? ज्ञानी पुरुष के पास निश्चय जानने को मिलता है, यदि जानना हो तो। व्यवहारिक गुरु संसार में मदद करते हैं, संसार में हमें जो समझ चाहिए, वैसी सारी आगे के लिए हेल्प करते हैं, कोई परेशानी हो तो सलाह देते हैं, अधर्म में से मुक्त करवाते हैं और धर्म दिखाते हैं। ज्ञानी तो धर्म और अधर्म दोनों छुड़वा देते हैं और मुक्ति की ओर ले जाते हैं। आपको समझ में आया न? वे व्यवहार के गुरु संसार में हमें सांसारिक धर्म सिखलाते हैं, क्या अच्छा करें और कौन-सा बुरा छोड़ दें, वे सारी शुभाशुभ की बातें हमें समझाते हैं। संसार तो खड़ा रहेगा ही, इसलिए वे गुरु तो रहने देने हैं और हमें मोक्ष में जाना है, तो उसके लिए ज्ञानी पुरुष, अलग से चाहिए! ज्ञानी पुरुष, वे भगवानपक्षी कहलाते हैं।

नहीं भूलते उपकार गुरु का

प्रश्नकर्ता : 'दादा' के मिलने से पहले किसी को गुरु माना हो तो? तो उसे क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तो उनके वहाँ जाओ न! नहीं जाना हो तो जाना ही है ऐसा अनिवार्य नहीं है। आपको जाना हो तो जाओ और नहीं जाना हो तो नहीं जाओ। उन्हें दु:ख नहीं हो, उसके लिए भी जाना चाहिए। हमें विनय करना चाहिए। यहाँ पर 'ज्ञान' लेते समय फिर मुझे कोई पूछे कि, 'अब मैं गुरु को छोड़ दूँ?' तब मैं कहता हूँ कि, 'मत छोड़ना। अरे, उन गुरु के प्रताप से तो यहाँ तक आया है।' गुरु के कारण मनुष्य कुछ मर्यादा में रह सकता है, गुरु नहीं हों न, तो मर्यादा भी नहीं रहती और गुरु से कह सकते हैं कि, 'मुझे ज्ञानी पुरुष मिल गए हैं। उनके दर्शन करने जा रहा हूँ।' कुछ लोग तो अपने गुरु को भी मेरे पास ले आते हैं। क्योंकि गुरु को भी मोक्ष चाहिए होता है न!

प्रश्नकर्ता : एक बार गुरु बनाए हों और फिर बाद में छोड़ दें तो क्या होगा?

दादाश्री : परंतु गुरु को छोड़ने की ज़रूरत ही नहीं है। गुरु को किसलिए छोड़ना है? मैं किसलिए छोड़ने को कहूँ? वापस उस झंझट में मैं कहाँ पड़ूँ? उसके उल्टे परिणाम खड़े होंगे, उसका गुनहगार मैं ठहरूँगा! अब उन गुरु को मनाकर हमें उनके साथ काम लेना चाहिए। ऐसा हो सकता है हमसे। हमें इन भाई से काम करवाना नहीं आता हो, मेल नहीं पड़ता हो, तो हम उससे काम कम करवाएँ। पर वैसे ही उनके पास आएँ-जाएँ, उसमें हर्ज क्या है हमें?

प्रश्नकर्ता : मानो कि किसी ने दूसरे गुरु बनाए हों, फिर आप मिले, इसलिए वह चाय और आप जलेबी जैसा हो जाता है, उसका क्या?

दादाश्री : वह चाय-जलेबी जैसा हो जाता है, वह डिफरन्ट मेटर है। वह तो स्वाभाविक रूप से हो जाता है। हम यदि ऐसा कहें कि, 'उन्हें छोड़ दो' तब तो उल्टे चलेंगे। इसलिए छोड़ नहीं देना है।

फीका लगे तो फीका, पर छोड़ नहीं देना है। उन्हें दुःख नहीं हो उसके लिए कभी आप जाकर दर्शन कर आओ। उन्हें ऐसा नहीं लगे कि 'यह आता था न, फिर बदल गया।' उन्हें यदि पता चले कि आप दूसरी जगह जाते हो, तब कहना, 'आपके आराधन से ही मुझे यह फायदा मिला है न! आपने ही इस रास्ते पर चलना सिखाया है न मुझे!' तब उन्हें आनंद होगा। आत्मसन्मुख का मार्ग कैसा है? किसी ने चाय का एक प्याला पिलाया हो न, तो उसे भूले नहीं। आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : समझ में नहीं आया इसलिए पूछ लिया।

दादाश्री : ठीक है। पूछकर पक्का किया हो तो अच्छा। हर एक चीज़ पूछकर पक्की कर लो।

यानी हम उनका तिरस्कार नहीं करें। जिन्हें गुरु बनाया हो, उनका तिरस्कार करना भयंकर गुनाह कहलाता है। उनके पास से कुछ तो लिया था न, हमने? कुछ तो हेल्प हुई होगी न? उन्होंने आपको एकाध सीढ़ी तो चढ़ाई होगी न? इसलिए आपको उनका उपकार मानना चाहिए। यानी अभी तक जो प्राप्त हुआ, उसका उपकार तो है ही न! कुछ हमें लाभ दिया, वह भूल नहीं सकते न! इसलिए गुरु को छोड़ नहीं देना होता, उनके दर्शन करने चाहिए। उन्हें छोड़ दें तब तो उन्हें दुःख होगा। वह तो आपका गुनाह कहलाएगा। आपका उपकार मेरे ऊपर हो, और मैं आपको छोड़ दूँ तो गुनाह कहलाएगा। इसलिए नहीं छोड़ना चाहिए, हमेशा उपकार रखना ही चाहिए। एक इतना भी उपकार किया हो और भूल जाए, वह व्यक्ति खरा नहीं कहलाता।

अर्थात् गुरु भले ही रहें। गुरु को रहने देना है। गुरु को हटाना नहीं है। कोई भी गुरु हों तो उन्हें हटाने नहीं जाना है। इस दुनिया में हटाने जैसा कुछ भी नहीं है। हटाने जाएँ तो आप जिनके आधार से चल रहे थे, उनके आप विरोधी हो गए कहलाएँगे। कुछ विरोधी होने की ज़रूरत नहीं है।

शिष्य की दृष्टि से

प्रश्नकर्ता : तो किस प्रकार के गुरु की शरण में गए हों तो आत्म उन्नति संभव है?

दादाश्री : गुरु अर्थात् कभी भी, पूरी ज़िंदगीभर अपना मन उनके लिए बिगड़े नहीं, ऐसे होने चाहिए। जब देखो तब मन में उल्लास ही रहा करे। वैसे गुरु यदि मिलें तो, उनकी शरण में जाना।

प्रश्नकर्ता : हमें खराब विचार आएँ और तुरंत ही हम भावना बदल दें, पर उसमें गुरुकृपा हमें कितनी हद तक सहायक होती है?

दादाश्री : गुरुकृपा से तो बहुत मदद मिलती है। परंतु अपनी वैसी भावना, वैसा प्रेम चाहिए। जिनके बिना हमें अच्छा नहीं लगे, चैन नहीं पड़े, वैसा भाव चाहिए। विरह लगना चाहिए।

गुरु का ज्ञान जितना कच्चा होगा, उतना समय उस शिष्य को अधिक लगेगा। एक्ज़ेक्ट ज्ञान तुरंत ही फल दे देता है और भले ही मुझे केवलज्ञान होते-होते रुक गया है, पर भेद ज्ञान तो मेरे पास आ गया है, और वह तुरंत फल दे ऐसा है।

गुरु का प्रेम - राजीपा

प्रश्नकर्ता : गुरु प्रसन्न हुए ऐसा कब माना जाएगा?

दादाश्री : वह तो हम संपूर्ण आज्ञा में रहे तो प्रसन्न होंगे। वे प्रसन्न हो जाएँ तो हमें पता चलेगा। रात-दिन हमें प्रेम में ही रखेंगे।

प्रश्नकर्ता : गुरु एक बार प्रसन्न हो जाएँ यानी ऐसे कोई खास प्रकार का वर्तन देखकर, फिर हमारे वर्तन में शायद कभी कमी आए तो वापस नाराज़ भी हो सकते हैं न?

दादाश्री : ऐसा है न, प्रसन्न किसे कहते हैं कि कभी नाराज़ ही नहीं हों। शिष्य तो भूल करते ही रहेंगे, लेकिन वे नाराज़ नहीं हों।

अनोखी गुरुदक्षिणा

प्रश्नकर्ता : आध्यात्मिक गुरु निःस्पृही हों तो उन्हें गुरुदक्षिणा किस तरह दी जा सकती है?

दादाश्री : उनकी आज्ञा पालने से। उनकी आज्ञा यदि पालें न, तो उन्हें गुरुदक्षिणा पहुँच जाती है। ये हम पाँच आज्ञा देते हैं, वे पालीं, तो हमारी दक्षिणा पहुँच गई।

प्रश्नकर्ता : विद्यागुरु निःस्पृही हों, तो उन्हें गुरुदक्षिणा किस तरह से चुका सकते हैं?

दादाश्री : विद्यागुरु निःस्पृही हों तो उनकी सेवा करके, शारीरिक सेवा और दूसरे काम करके चुकाई जा सकती है। दूसरे भी कई तरीक़े होते हैं। निःस्पृही की भी अन्य प्रकार से सेवा की जा सकती है।

अंतर्यामी गुरु

प्रश्नकर्ता : बाह्य गुरु और अंतर्यामी गुरु इन दोनों की उपासना साथ में की जा सकती है?

दादाश्री : हाँ। अंतर्यामी गुरु यदि खुद आपको मार्गदर्शन देते रहते हों तो फिर बाह्य गुरु की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : देहधारी गुरु हों तो पुरुषार्थ अधिक हो सकता है।

दादाश्री : हाँ, वह तो प्रत्यक्ष गुरु हों तो पुरुषार्थ तुरंत होता है। अंतर्यामी तो आपको बहुत मार्गदर्शन देते हैं। वह बहुत ऊँचा कहलाता है। अंतर्यामी प्रकट होना बहुत मुश्किल वस्तु है। वह तो बाहर के जो गुरु हैं, वे आपको अधिक हेल्प करेंगे।

नहीं तो भीतर आपके आत्मा को गुरु बनाओ। उनका नाम शुद्धात्मा है। उनसे कहें, 'हे शुद्धत्मा भगवान, आप मुझे मार्गदर्शन दीजिए', तो वे देंगे।

किसे ज़रूरत नहीं है गुरु की?

प्रश्नकर्ता : आपके पास यथार्थ समकित हो जाए तो फिर गुरु की ज़रूरत नहीं है न?

दादाश्री : फिर गुरु नहीं चाहिए। गुरु की किसे ज़रूरत नहीं है? कि मेरे जैसे ज्ञानी पुरुष को गुरु की ज़रूरत नहीं है। जिन्हें खुद के सर्वस्व दोष दिखते हैं!

प्रश्नकर्ता : आपने ज्ञान प्रदान किया तो उसमें सतत जागृत रहने के लिए गुरु का सत्संग अथवा गुरु का सामिप्य ज़रूरी है या नहीं?

दादाश्री : हाँ, उस सब की ज़रूरत है न! पाँच आज्ञा पालने की ज़रूरत है, सभी की ज़रूरत है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् गुरु की ज़रूरत है ही न?

दादाश्री : गुरु की ज़रूरत नहीं है। यह साध्य होने के बाद गुरु कौन हैं फिर? साधक के गुरु होते हैं। ये मुझे साठ हज़ार लोग मिले हैं। उन्हें गुरु बनाने की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उन्हें सत्संग की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : हाँ, सत्संग की ज़रूरत है। फिर, पाँच आज्ञा पालने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : यहाँ रोज़ आएँ, आप जब हों तब, उसकी ज़रूरत है न?

दादाश्री : मैं यहाँ पर होऊँ तब लाभ उठाएँ। रोज़ नहीं आएँ और महीने में एक बार आए तो भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपकी गैरहाज़िरी में उस प्रकार की जागृति की ज़रूरत है या नहीं? सत्संग की ज़रूरत है या नहीं?

दादाश्री : ज़रूरत तो है ही न! लेकिन हो सके उतना करना चाहिए, जितना हो सके उतना। तो आपको अधिक लाभ होगा।

प्रश्नकर्ता : आप परदेश जाते हो तब यहाँ पर बिल्कुल खाली हो जाता है। यहाँ फिर कोई इकट्ठे ही नहीं होते।

दादाश्री : वैसा तो आपको खाली (अकेलापन) लगता है। हमें किसी को खाली नहीं लगता। पूरा दिन दादा भगवान साथ में ही रहते हैं। होल डे, निरंतर, चौबीसों घंटें साथ में रहते हैं दादा भगवान। मैं वहाँ फ़ॉरेन होऊँ तो भी! गोपियों को जिस तरह कृष्ण भगवान रहते थे न वैसे ही रहते हैं, निरंतर!

उसे शिष्य कहा जाता है

आपको स्पष्ट समझ में आया या नहीं? स्पष्ट रूप से समझ में आए तो हल आएगा। नहीं तो इसका हल किस तरह आएगा? जिस स्पष्टतापूर्वक मैं समझा हूँ और जिस स्पष्टता से मैं छूटा हूँ, संपूर्ण छूट गया हूँ, जो रास्ता मैंने अपनाया है, वही रास्ता मैंने आपको दिखाया है।

प्रश्नकर्ता : परंतु ऐसी बात बाहर का व्यक्ति तो किस तरह समझेगा?

दादाश्री : बाहर वाले को नहीं समझना है। यह तो आपको समझना है। दूसरे को समझ में आए वैसी यह बात नहीं है। वह तो जिसे जितना उतरे उतना उतरे! सभी शायद न भी समझ सकें। दूसरे सभी को इतनी शक्ति होनी चाहिए न! पचाने की शक्ति होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए? इन मनुष्यों का कोई ठिकाना नहीं है। दिमाग़ का ठिकाना नहीं, मन का ठिकाना नहीं, जहाँ-तहाँ चिढ़ जाते हैं, जहाँ-तहाँ लड़ पड़ते हैं। वे तो पहले के मनुष्य थे, स्थिरता वाले!

वर्ना ये तो बदहाल हो चुके लोग हैं! वहाँ पर बॉस झिड़कता है, घर पर पत्नी झिड़कती है, कोई ही व्यक्ति इससे बचा होगा। वर्ना अभी तो बदहाल हो गए हैं। अभी तो लोग गुरु के पास किसलिए जाते हैं? लालच के कारण जाते हैं कि, 'मेरा यह ठीक कर दीजिए। मेरा ऐसा हो जाए, गुरु मुझ पर कुछ कृपा करें और मेरे दिन बदल जाएँ।'

प्रश्नकर्ता : तो गुरु बनाते समय शिष्य में कैसे गुण होने चाहिए?

दादाश्री : अभी के शिष्य में अच्छे गुण कहाँ से होंगे! वह

भी इस कलियुग में? बाकी, शिष्य तो किसे कहा जाता है कि उसके गुरु पागलपन करें तो भी श्रद्धा उठे नहीं, वह शिष्य कहलाता है। गुरु पागलपन करे तो भी अपनी श्रद्धा नहीं उठे, शिष्य के रूप में वह हमारा गुण कहलाता है। ऐसा होगा आपसे?

प्रश्नकर्ता : अभी तक वैसा अवसर उपस्थित नहीं हुआ।

दादाश्री : वैसा हो तो क्या करोगे?

हाँ, गुरु पर श्रद्धा रखो तो ऐसी रखो, कि जो श्रद्धा रखने के बाद उठानी नहीं पड़े। नहीं तो श्रद्धा रखना ही नहीं शुरू से। वह क्या बुरा?

कल तक उन्हें लोग मानते थे, और फिर गुरु पागलपन करें तब गालियाँ देने लगे। ऐसी-ऐसी गालियाँ देने लगे। अरे, तब फिर उन्हें माना किसलिए था तूने? यदि माना तो गालियाँ देना बंद कर। अभी तक पानी पिला-पिलाकर बड़ा किया, उसी पेड़ को तूने काट दिया? तेरी क्या दशा होगी? गुरु का जो होना होगा वह होगा, पर तेरी क्या दशा होगी?

प्रश्नकर्ता : हमने मन में गुरु के लिए ऊँची कल्पना की होती है न, वह खंडित हो जाती है तब ऐसा होता है?

दादाश्री : या तो गुरु बनाना नहीं, और बनाओ तो गुरु पागलपन करे तो भी उसमें आपकी दृष्टि नहीं बिगड़नी चाहिए।

नहीं देखते भूल कभी गुरु की

ये तो पाँच दिनों में ही गुरु की भूल निकालते हैं। 'आप ऐसा क्यों करते हैं?' अरे, उनकी भूल निकालता है? गुरु की भूल निकालते हैं ये लोग?

प्रश्नकर्ता : गुरु की कभी भी भूल नहीं निकालनी चाहिए!

दादाश्री : हाँ, पर वह भूल निकाले बिना रहता नहीं है न! ये तो कलियुग के लोग! इसलिए फिर अधोगति में जाते हैं। अभी गुरु परफेक्ट नहीं होते। अभी परफेक्ट गुरु कहाँ से लाएँगे? ये गुरु तो कैसे हैं? कलियुग के गुरु!

गुरु से मानो कि भूलचूक हो जाए फिर भी तू यदि उनका शिष्य है तो अब छोड़ना मत। क्योंकि दूसरा सबकुछ कर्म का उदय होता है। ऐसा नहीं समझ में आता तुझे? तू किसलिए दूसरा कुछ देखता है? उनके पद को तू नमस्कार कर न! वे जो करें, वह तुझे नहीं देखना है। हाँ, उनका उदय आया है, इसलिए वे भोग रहे हैं। उसमें तुझे क्या लेना-देना? तुझे उनका देखने की ज़रूरत क्या है? उनके पेट में दर्द होता हो तो गुरुपन चला गया? उन्हें एक दिन उल्टी हुई तो उनका गुरुपन चला गया? आप लोगों को कर्म के उदय होते हैं तो उन्हें कर्म के उदय नहीं होते होंगे? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : (गुरु के) पेट में दर्द हो रहा हो तो सभी शिष्यों को चले जाना चाहिए? अभी मुझे पेट में दर्द हो तो आप सब चले जाओगे? यानी अपराध में मत पड़ना। विरोधी नहीं बनना। जिन्हें आप पूजते थे, जिनके आप फॉलोअर्स थे, उनके ही आप विरोधी बन गए? तो आपकी क्या दशा होगी? वह गुरुपद नहीं जाना चाहिए? उन्हें दूसरी दृष्टि से मत देखना। परंतु आज तो कितने लोग दूसरी दृष्टि से नहीं देखते हैं?

पूज्यता नहीं टूटे, वही सार

ऐसा है न, चालीस वर्षों से जो अपने गुरु हों, और उन गुरु को ऐसा हो, तो भी अपने में बदलाव नहीं होने देना चाहिए। हम वही दृष्टि रखें, जिस दृष्टि से पहले देखे थे, वही दृष्टि रखें, वर्ना यह तो भयंकर अपराध कहलाता है। हम तो कहते हैं कि गुरु बनाओ तो सोच-समझकर बनाना। फिर पागल-बावरे निकलें, तो भी तुझे उनका पागलपन नहीं देखना है। जिस दिन तूने गुरु बनाए थे, फिर वैसे ही गुरु को देखना है। मैं तो उन्हें पूजने के बाद, वे मारे-करें तो भी मैं उनकी पूजा नहीं छोड़ूँ। क्योंकि 'मैंने जिन्हें देखा था, वे अलग थे और आज यह कोई प्रकृति के वश में होकर अलग वर्तन हो रहा है, परंतु खुद की इच्छा के विरुद्ध है यह', ऐसा समझ लो तुरंत। हमने एक बार हीरा पसंद करके लिया, और फिर क्या? वह वापस क्या काँच हो जाएगा? वह तो हीरा ही है।

इस पर से मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। हमने खुद एक पेड़ लगाया हो और वहाँ पर हमें ही रेल्वे लाइन डालनी हो और पेड़ रेल्वे के बीच में आता हो और यदि काटने का अवसर आए, तो मैं कहूँ कि मैंने लगाया है, मैंने पानी से सींचा है, इसलिए रेल्वे लाइन बदल दो परंतु पेड़ नहीं कटना चाहिए। इसलिए एक महाराज के मैंने पैर छुए हों, तो वे चाहे जो करें, तो भी मेरी दृष्टि मैं नहीं बिगाड़ूँ। क्योंकि वे तो कर्माधीन हैं। जो दिखता है वह सारा ही कर्माधीन है। मैं जानता हूँ कि इन्हें कर्म के उदय ने घेर लिया है। इसलिए दूसरी दृष्टि से नहीं देखना चाहिए ऐसा-वैसा। यदि पेड़ काटना था तो उसे पालना-पोसना नहीं था, और पाला-पोसा है तो काटना नहीं। यह हमारा सिद्धांत है पहले से! आपका सिद्धांत क्या है? समय आए तो काट देंगे, बिना सोचे-समझे?

इसलिए जिन्हें पूजते हैं, उन्हें उखाड़ मत देना। नहीं तो फिर जिन्हें पूजा है, चालीस वर्षों से पूजा है और इकतालीसवें वर्ष में हटा दें, काट दें, तो चालीस वर्षों का तो गया, और ऊपर से दोष बँधे।

आप जय-जय करना मत और करो तो उसके बाद पूज्यता टूटनी नहीं चाहिए। वह नहीं टूटे, वही इस जगत् का सार है! इतना ही समझना है।

इसमें दोष किसका?

प्रश्नकर्ता : परंतु इस जगत् में जिस वस्तु को हम पूज्य मानें, वह जब तक अपने अनुरूप हो तब तक संबंध रहता है और थोड़ा-सा उसकी तरफ से कुछ भी उल्टा हुआ कि अपना संबंध बिगड़ा!

दादाश्री : हाँ, वह मिट्टी में मिल जाता है। बिगड़े उतना ही नहीं, लेकिन विरोधी बन बैठता है।

प्रश्नकर्ता : उसकी तरफ का जो भाव था, वह सारा खत्म हो गया।

दादाश्री : खत्म हो गया और ऊपर से विरोधी बन गया।

प्रश्नकर्ता : तब इसमें किसकी भूल है?

दादाश्री : जिसे उल्टा दिखता है न, उसका दोष! उल्टा है ही नहीं कुछ इस जगत् में। बाकी, जगत् तो देखने-जानने जैसा ही है, दूसरा क्या? उल्टा और सीधा आप किसे कहते हो? वह तो बुद्धि अंदर उसकाती है।

प्रश्नकर्ता : परंतु उल्टा और सीधा देखने वाले का दोष है, ऐसा आप कहते हैं न?

दादाश्री : हाँ, वह बुद्धि का दोष होता है। हमें समझना चाहिए कि यह 'उल्टा-सीधा', बुद्धि दोष करवाती है। इसलिए हमें इससे दूर ही रहना चाहिए। बुद्धि है तब तक वैसा करेगी तो सही, परंतु हमें समझना चाहिए कि यह किसका दोष है! अपनी आँख से उल्टा दिख जाता हो तो हमें पता चलता है कि आँख से ऐसा दिखा!

सन्निपात, तब भी वही दृष्टि

ज्ञानी पुरुष को या गुरु को या किसी को भी पूजा हो, फिर कभी यदि उन्हें सन्निपात हो गया हो न, तब वे काटने दौड़ें, मारें, गालियाँ दें तो भी उनका एक भी दोष नहीं देखना। सन्निपात हो गया हो तो, गालियाँ दें तो, वहाँ कितने लोग धीरज पकड़ेंगे वैसी? यानी कि समझ ही नहीं है वैसी। वे तो वही के वही हैं, लेकिन यह तो प्रकृति का चेन्ज है। किसी को भी, प्रकृति तो सन्निपात होते देर ही नहीं लगती न! क्योंकि यह शरीर किसका बना हुआ है? कफ़, वायु और पित्त का बना हुआ है। भीतर कफ़, वायु और पित्त ज़रा बढ़ जाएँ कि हो गया सन्निपात!

गुरु - पाँचवी घाती

आज के इस पंचम आरे (कालचक्र का एक भाग) के जो सारे जीव हैं, वे कैसे जीव हैं? पूर्वविराधक जीव हैं। इसीलिए गुरु में जो प्रकृति के दोष के कारण भूलचूक हो जाए तो उल्टा देखते हैं और लोग विराधना कर डालते हैं। इसलिए गुरु बनाने के बाद यदि विराधना करनी हो, आपकी कमज़ोरी ही खड़ी होने वाली हो तो गुरु बनाना मत। नहीं तो भयंकर दोष है। गुरु बनाने के बाद विराधना मत करना। चाहे जैसे गुरु हों, फिर भी अंत तक उनकी आराधना में ही रहना। आराधना नहीं

हो सके तो विराधना तो कभी करना ही मत। क्योंकि गुरु की भूल देखना, वह पाँचवी घाती है। इसलिए तो ऐसा सिखाते हैं कि, 'भाई देख, गुरु पाँचवी घाती हैं, इसलिए यदि गुरु की भूल दिखी तो तू मारा गया समझना।'

एक व्यक्ति आकर कहता है, मुझे गुरु ने कहा है कि, 'चला जा यहाँ से, अब यहाँ हमारे पास मत आना।' तब से मुझे वहाँ जाने का मन नहीं होता।

तब मैंने उसे समझाया कि नहीं जाए तो भी हर्ज नहीं है, परंतु फिर भी गुरु से माफ़ी माँग लेना न! जो माफ़ी माँग ले वह यहाँ से, इस दुनिया से मुक्त हो जाएगा। मुँह पर तो माफ़ी माँग ली। अब मन से माफ़ी माँग लेना और इस कागज़ पर जो लिखकर दिया है, उस अनुसार घर पर प्रतिक्रमण करते रहना। तब फिर उसे प्रतिक्रमण विधि लिखकर दी।

तूने जो गुरु बनाए हैं, उनकी निंदा में मत पड़ना। क्योंकि दूसरा सबकुछ उदयकर्म के अधीन है। मनुष्य कुछ भी कर ही नहीं सकता। अब आपत्ति नहीं उठाना भी गुनाह है। परंतु आपत्ति वीतरागता से उठानी है, ऐसे उस पर धूल उड़ाकर नहीं। 'ऐसा नहीं होना चाहिए' कह सकते हैं, परंतु नाटकीय! क्योंकि वे तो उदयकर्म के अधीन हैं। अब उनका दोष निकालकर क्या करना है? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : फिर गुरु का जो उपकार है, उसे मानना चाहिए। क्योंकि उन्होंने आपको इस बाउन्ड्री से बाहर निकाला, वह उपकार भूलना नहीं। जिन गुरु ने इतना भला किया हो, उनके गुण किस तरह से भूल सकते हैं? इसलिए उनके वहाँ जाना चाहिए। गुरु अवश्य बनाने चाहिए और एक गुरु बनाने के बाद उन गुरु के प्रति ज़रा-सा भी भाव बिगाड़ना नहीं चाहिए। इतना सँभाल लेना चाहिए, बस।

उल्टा भी नहीं सोचना गुरु का

गुरु तो शिष्य को ज़रा-सा कहे कि 'तुझमें अक्ल नहीं है', तो शिष्य चला जाता है। अपमान लगता है, इसलिए चला जाता है। वहाँ

तो वह विरोधी हो जाता है कि 'आपका दिमाग़ तो चलता नहीं, और मेरे गुरु बन बैठे हैं', ऐसा कहता है, इसलिए बल्कि बुरा होता है!

कल पैर छूता हो और आज पत्थर मारता है? जिनके पैर छूए हैं, उन्हें कभी नहीं मारना। यदि मारना हो तो फिर से कभी पैर मत छूना!

गुरु कहेंगे, आपको ग्यारह बजे यहाँ से कहीं भी नहीं जाना है। फिर अंदर मन कूदने लगे तो भी नहीं जाना। ऐसे कोई हैं सही, गुरु चाहे जैसे बर्ताव करें परंतु वे अधीन रहते हैं। परंतु अभी के गुरु की अधीनता रहती है, उसमें वे गुरु भी इतने अधिक कच्चे और कमज़ोर है कि शिष्य फिर परेशान होकर कहेगा कि 'ये बिना बरकत के गुरु मिले हैं!' ऐसा एक ही बार बोले न, तो सबकुछ किया-कराया खत्म हो जाता है!

गुरु का किया हुआ सब, निन्यानवे वर्ष तक अच्छा किया हो, वह गुरु सिर्फ छह महीने उल्टा करे तो शिष्य सबकुछ खत्म कर देता है!

इसलिए गुरु के पास यदि कभी अधीन नहीं रहा हो तो क्षणभर में सारा खत्म कर देता है! क्योंकि यह विस्फोटक (बारुदखाना) है। ये दूसरी सभी चीजें बारुदखाना नहीं है। यह सिर्फ गुरु के पास ही बारुदखाना है। सबकुछ किया हो, परंतु वह बारुदखाना भारी है इसलिए बहुत जागृत रहना, सावधान रहना और यदि चिंगारी गिरी तो निन्यानवे वर्ष का किया-कराया धूलधूसरित हो जाएगा! और जल मरेगा, वह अलग!

वहाँ उपाय करना रहा

एक व्यक्ति मुझे कहता है कि, 'एक बड़े संत पुरुष हैं, उनके यहाँ जाता हूँ, उनके दर्शन करता हूँ। फिर भी अब मुझे मन में उनके लिए खराब विचार आते हैं।' मैंने कहा, 'क्या विचार आते हैं?' तब वह कहता है, 'यह नालायक है, दुराचारी है, ऐसे सब विचार आते हैं।' मैंने कहा, 'तुझे ऐसे विचार करने पसंद हैं?' तब उसने कहा, 'अच्छा नहीं लगता फिर भी आते हैं। तो अब किस तरह बंद हों? उसका क्या उपाय करूँ?' आप क्या उपाय करोगे? इसमें दोष किसका है? गुरु का?

प्रश्नकर्ता : जिसे विचार आते हैं, उसका।

दादाश्री : हाँ, इसलिए मैंने उससे क्या कहा कि ''भाई, यदि ऐसे खराब विचार आएँ कि 'यह नालायक है और इतने खराब है', तो वैसे विचार आना अपने हाथ में नहीं है। तो तब तुझे बोलना चाहिए कि 'बहुत उपकारी हैं।' मन 'खराब हैं', बोलता रहे, तो तुझे 'बहुत उपकारी हैं' ऐसे बोलना चाहिए। जिससे कि प्लस-माइनस होकर खत्म हो जाएगा। इसलिए यह उपाय बताता हूँ।''

गुरुभक्ति तो खोजाओं की

उस समय तो मैंने उन खोजा लोगों का देखा था कि, सभी एक गुरु को मानते थे, कहते थे समर्थ गुरु हैं हमारे! अमरीका में जाकर दूसरे कोई एक गुरु ने शादी की इसलिए उनके भक्त, नालायक है, नालायक है, कहने लगे। सभी शिष्य विरोधी हो गए कि ऐसा गुनाह नहीं करना चाहिए। अरे, तुम्हारे गुरु को नालायक कहते हो? आप नमस्कार किसे करते थे? तब मुझे कहते हैं, 'ऐसे गुरु नालायक नहीं कहलाएँगे?' मैंने कहा, 'इन खोजा लोगों को पूछकर देखो। उनकी विशेषता यह लगी कि उनके भक्त सब से उच्च लगे पूरी दुनिया में। उन्होंने फ़ॉरेन की लेडी के साथ शादी की, तो भी उनके भक्त उत्सव मनाते हैं, और हम यहाँ के कोई गुरु उनकी जाति में शादी कर लें, तो भी मार-मारकर फज़ीता कर देते हैं। खोजा लोग तो गुरु ने फ़ॉरेन वाली से शादी की तो भी उत्सव मनाते हैं। उनके शिष्य तो कहेंगे, 'भाई, उन्हें सभी अधिकार हैं, हम ना नहीं कह सकते!' हमें तो तुरंत उत्सव मनाना चाहिए। तो यहाँ उनके सभी फॉलोअर्स बहुत खुश हो गए! यहाँ तो जुलूस निकाला उन लोगों ने! गुरु करें वह नहीं करना है, हमें तो गुरु कहे वह करना है।

पूरी दुनिया में गुरु बनाना यदि किसी को आया हो तो वह इन खोजा लोगों को! आपके गुरु ने यदि विवाह कर लिया हो, अरे, विवाह नहीं किया हो, परंतु किसी को ज़रा-सा छेड़ा भी हो तो वहाँ आप सब उन्हें मारते रहो। इन खोजा लोगों के गुरु ने तो विवाह किया एक यूरोपिनय लेडी से! उन सभी लोगों ने उत्सव मनाया कि अपने गुरु एक यूरोपियन लेडी से शादी कर रहे हैं! उसे शिष्य कहते हैं। गुरु की कमी

नहीं निकालते। सब की कमी निकालना, परंतु गुरु की कमी नहीं निकालनी चाहिए, वह तो बहुत बड़ा जोखिम है। नहीं तो गुरु बनाना ही नहीं।

मैं गुरु की आराधना करने को नहीं कहता हूँ, परंतु उनकी विराधना मत करना। और यदि आराधना करे तो काम ही हो जाए, परंतु उतनी अधिक आराधना करने की शक्ति मनुष्यों में होती नहीं। मैं क्या कहता हूँ कि पागल को गुरु बनाना, बिल्कुल पागल को बनाना, परंतु पूरी ज़िंदगी उसे 'सिन्सियर' रहो तो आपका कल्याण हो जाएगा। बिल्कुल पागल गुरु के प्रति सिन्सियर रहने से आपके सभी कषाय खत्म हो जाएँगे! परंतु उतना समझ में आना चाहिए न! उतनी मति पहुँचनी चाहिए न! इसीलिए ही तो आपके लिए 'पत्थर' के देवता स्थापित किए कि यह प्रजा ऐसी है, इसलिए पत्थर के रखो ताकि कमी नहीं निकालें। तब कहते हैं, 'नहीं, पत्थर में भी कमी निकालते हैं कि यह श्रृंगार ठीक नहीं है!' यह प्रजा तो बहुत विचारक है! बहुत विचारक, वे गुरु के दोष निकालें वैसे हैं। खुद के दोष निकालने तो कहाँ रहे, परंतु गुरु का ही दोष निकालते हैं! इतनी अधिक तो उनकी एलर्टनेस (जागरुकता) है!

हम गारन्टी देते हैं कि किसी भी पागल को गुरु बना लो और यदि पूरी ज़िंदगी उसे निभाओ तो मोक्ष तीन जन्मों में हो जाए ऐसा है। परंतु गुरु जीवित होने चाहिए। इसीलिए तो इन लोगों को यह नहीं पुसाया और मूर्ति रखी गई।

इसलिए मेरा क्या कहना है कि खुद का डिसाइड किया हुआ ऐसे मत तोड़ दो। गुरु बनाने, वह कोई जैसी-तैसी बात नहीं है। नहीं तो गुरु बनाओ तो अच्छी तरह से जाँच-पड़ताल करके बनाओ।

नहीं तो घड़े को बनाओ गुरु

प्रश्नकर्ता : परंतु जब गुरु बनाते हैं न, तब शिष्य में इतनी समझ नहीं होती।

दादाश्री : और यह समझदारी का बोरा(!) हो गया, इसलिए अब गुरु को नठारा कहना चाहिए? इसके बदले तो भीम था न, उस

भीम का तरीक़ा अपनाना। दूसरे चार भाईयों का तरीक़ा नहीं अपनाना है हमें। क्योंकि किसी गुरु के पास नमस्कार करना पड़े तो भीम को कँपकँपी छूटती थी, अपमान जैसा लगता था। इसलिए भीम ने क्या सोचा? कि 'ये गुरु मुझे पुसाते नहीं। ये सारे मेरे भाई बैठते हैं, उन्हें कुछ नहीं होता और मैं तो देखता हूँ और मेरा अहंकार उछलने लगता है। मुझे उल्टे विचार आते हैं। मुझे गुरु तो बनाने ही चाहिए। गुरु के बिना मेरी क्या दशा होगी?' उसने रास्ता ढूँढ निकाला।

एक मिट्टी का घड़ा था, उसे जमीन में उल्टा गाड़ दिया और ऊपर काला रंग किया और लाल अक्षर में लिखा कि 'नमो नेमीनाथाय:' श्याम, नेमीनाथ काले थे इसलिए ब्लेक रंग किया! और फिर उसकी भक्ति की। हाँ, वह घड़ा गुरु और खुद शिष्य!

यहाँ पर गुरु प्रत्यक्ष आँखों से नहीं दिखते हैं और उन प्रत्यक्ष गुरु के सामने उसे शर्म आती थी और नमस्कार नहीं करते थे, और यहाँ घड़ा उल्टा गाड़कर दर्शन किए, इसलिए भक्ति शुरू हो गई, फिर भी फल मिलता रहता था। क्योंकि पोइज़न नहीं होता था। यहाँ भी उल्लास आने लगे न तो आपका कल्याण हो जाए!

यानी सुबह होती, शाम होती कि भीम वहाँ पर बैठ जाते। तो ऐसे गुरु अच्छे कि कभी गुस्सा तो नहीं आता हमें, झंझट तो नहीं है। गुस्सा आए तब घड़ा उखाड़ दें, और उन मनुष्यों पर तो बैठी हुई श्रद्धा, वह तो मार ही डालती है, क्योंकि भीतर भगवान हैं। उस घड़े पर तो सिर्फ आरोपण ही है, हमने भगवान का आरोपण किया है।

प्रश्नकर्ता : घड़े को गुरु बनाया, फिर भी लाभ मिला?

दादाश्री : लाभ होगा ही न, लेकिन उसे! ऐसे सीधी तरह से नहीं किया, परंतु उल्टी तरह से भी किया न! नेमीनाथ भगवान को नमस्कार किया न! तब वह तो ऐसा है न, यहाँ इतने छोटे-छोटे बच्चे होते हैं, उनके माता-पिता कहते हैं कि, 'दादाजी को जय-जय कर।' परंतु बच्चा जय-जय नहीं करता। फिर जब बहुत कहें न, तो अंत में ऐसे पीछे रहकर, घूमकर जय-जय करता है। वह क्या सूचित करता

है? अहंकार है वह सब! उसी तरह भीम को भी अहंकार था, इसलिए इस तरह घड़ा रखकर भी किया। फिर भी लाभ तो ज़रूर हुआ उसे। हाँ, परंतु सचमुच ऐसा चला था! उस समय नेमीनाथ भगवान जीवित थे।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् वे प्रत्यक्ष थे?

दादाश्री : हाँ, वे प्रत्यक्ष थे।

प्रश्नकर्ता : इसलिए कुल मिलाकर तो उन्हीं की भजना की।

दादाश्री : हाँ, परंतु उन्होंने नाम से और स्थापना से आराधना की नेमीनाथ भगवान की!

प्रश्नकर्ता : परंतु घड़े को हम गुरु बनाएँ, तो वह जड़ पदार्थ हो गया न?

दादाश्री : ऐसा है न, इस दुनिया में जो आँखों से दिखता है वह सारा ही जड़ है, एक भी चेतन नहीं दिखता है।

प्रश्नकर्ता : आपको कोई सवाल पूछे और आप जवाब देते हैं, वैसे घड़ा तो जवाब नहीं ही देगा न?

दादाश्री : घड़ा जवाब नहीं देगा। परंतु गुरु बनाकर आप यदि गुरु को भटका देने वाले हों, बाद में आप बिगाड़ने वाले हों, तो गुरु मत बनाना और आप हमेशा सीधे रहने वाले हो, तो गुरु बनाना। मैं तो सच्ची सलाह देता हूँ। फिर जैसे करना हो वैसे करना। बीच रास्ते में काट डालो तो बहुत जोखिमदारी है। गुरु का बीच रास्ते में घात करना, इसके बदले तो आत्मघात करना अच्छा है।

उत्थापन, वह तो भयंकर गुनाह

गुरु को गुरु के रूप में मानना मत, और मानो तो फिर पीठ मत फेरना उनकी तरफ। तुझे वह पसंद नहीं हो तो लोटा रख! लोटे में हर्ज नहीं है। जय-जय कर, वहाँ फिर बुद्धि उछलकूद नहीं करेगी, तो वह तेरा काम निकाल देगा। अब इतना सब किसे सँभालना आता है? यह सब किस तरह समझ में आए?

प्रश्नकर्ता : गुरु बनाते समय बहुत अच्छा लगता है, सद्‌गुणी लगते हैं कि इनके जैसा कोई है ही नहीं। परंतु बनाने के बाद गड़बड़ निकले तब क्या करें?

दादाश्री : इससे अच्छा तो स्थापन करना ही मत। लोटा रखना अच्छा, वह किसी दिन उखाड़ना तो नहीं पड़ेगा। लोटे का झंझट ही नहीं न! यह लोटा कुछ इतना सारा काम नहीं करता, परंतु हेल्प बहुत करता है।

प्रश्नकर्ता : गुरु की स्थापना तो कर दी, परंतु बुद्धि कुछ एकदम चली नहीं जाती, इसलिए उसे उल्टा दिखता है। उसका वह क्या करे?

दादाश्री : दिखता है, परंतु स्थापना की, इसलिए अब उल्टा नहीं होगा। स्थापना की इसलिए बुद्धि से कह दो कि, 'यहाँ पर तेरा वर्चस्व नहीं रहेगा, मेरा वर्चस्व है यह। यहाँ तेरी और मेरी, दोनों की स्पर्धा है अब। मैं हूँ और तू है।'

एक बार स्थापन कर के फिर उखाड़ना, वह तो भयंकर गुनाह है। उसके दोष लगे हैं इन हिन्दुस्तान के लोगों को! उन्हें गुरु की स्थापना ही करनी नहीं आती। आज स्थापन, तो कल उखाड़ देते हैं। परंतु ऐसा नहीं चलेगा। गुरु जो कुछ भी करते हों, उसमें तू किसलिए माथा पच्ची करता है, स्थापना करने के बाद? एक बार दिल में ठंडक हुई, इसलिए 'मुझे हर्ज नहीं है' ऐसा कहकर आपने गुरु बनाए। तो अब गुरु में कमियाँ निकालते हो? कमी निकालने वाले कभी भी मोक्ष में नहीं गए, परंतु नर्क में गए हैं।

फिर गुरु के तो दोष ही नहीं निकालते

इसलिए कोई अच्छे गुरु ढूँढ निकालो कि जो अपने दिल को पसंद आएँ। वैसे गुरु ढूँढने पड़ेंगे। अपने दिल को आनंद हो ऐसे गुरु चाहिए। हमेशा के लिए अपने दिल को ठंडक हो वैसे हों, गुरु बनाने के बाद कभी भी अपना मन उनके प्रति बिगड़े नहीं, वैसे हों तब गुरु बनाना। हाँ, नहीं तो फिर बाद में उनके साथ हमारी लठ्ठबाज़ी होगी। दिल में ठंडक होने के बाद लठ्ठबाज़ी होने वाली जगह पर भी लठ्ठबाज़ी करनी नहीं है।

एक बार दिल में ठंडक हो गई और फिर हम बुद्धि से नापने जाएँ कि, 'ये गुरु ऐसे कैसे निकले?' तो नहीं चलेगा। बुद्धि से कह देना कि, 'वे ऐसे निकले ही नहीं। हमने जैसे एक बार देख लिए, वही ये गुरु हैं!'

इसलिए हमने क्या कहा? कि तेरी आँखों में समाएँ वैसे हों, उन्हें गुरु बनाना। फिर गुरु एक दिन तुझ पर चिढ़ गए, तो वह मत देखना अब। पहले जो आँखों में समाए थे, जैसे देखे थे, वही के वही नज़र आने चाहिए। हमने पसंद किए थे न! ये लड़कियाँ पति को पसंद करें, उस घड़ी जो रूप देखा हो, वह फिर चेचक निकले, फिर भी वह उसे पहले दिन वाले रूप में ही याद रखती है फिर! क्या करे फिर? तभी दिन बीतेंगे। नहीं तो दिन नहीं बीतेंगे। इस तरह जिसे स्वच्छंद निकाल देना हो, उसे गुरु को इसी तरह देखना चाहिए। गुरु की भूल नहीं देखनी चाहिए। गुरु बनाए मतलब बनाए, फिर एक भी दोष नहीं दिखे, उस प्रकार से रहना। नहीं तो हम दूसरी जगह पर जा सकते हैं। यानी गुरु अपनी आँखों में समाएँ वैसे ढूँढकर, और फिर उनके दोष नहीं निकालने चाहिए। परंतु लोग समझते नहीं हैं और गुरु बना बैठते हैं।

वास्तव में तो श्रद्धा ही फलती है

प्रश्नकर्ता : गुरु पर हमें यदि श्रद्धा हो, फिर गुरु में चाहे जो हो, परंतु अपनी श्रद्धा हो तो वह फलती है या नहीं फलती?

दादाश्री : अपनी श्रद्धा फलेगी, लेकिन गुरु पर अभाव नहीं आए तब हमारी श्रद्धा फलेगी। गुरु शायद कभी उल्टा-सीधा करें तो भी अभाव नहीं रहे तो अपनी श्रद्धा फलेगी।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अपना यदि भाव हो, तो हम गुरु से भी आगे बढ़ सकते हैं न?

दादाश्री : बढ़ो, ज़रूर बढ़ो! परंतु आप अपना भाव नहीं बिगाड़ोगे तो। गुरु के भीतर भगवान बैठे हैं, जीते-जागते। उस भीम ने लोटा रखा था तो भी चल गया था। आपकी श्रद्धा ही काम करती है न! किसी व्यक्ति ने गुरु बनाए हों और वे गुरु जब कभी थोड़ा-सा भी टेढ़ा बोलें,

और यदि व्यक्ति को फिर भूल निकालने की आदत हो न, तो वह गिर जाएगा। यदि तुझमें गुरु सँभालने की शक्ति हो, तो गुरु चाहे जैसा उल्टा-सीधा करें या फिर गुरु को सन्निपात हो जाए तो भी सँभाल लो तब काम का। परंतु अंत तक निभाते ही नहीं हैं न! निभाना आता ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : अयोग्य पुरुष में भी यदि पूर्ण श्रद्धा से स्थापना की हो तो वह फल देगी या नहीं?

दादाश्री : क्यों नहीं? परंतु उनका स्थापन करने के बाद हमें पलटना नहीं चाहिए।

यह सब क्या है? आपको वास्तविकता बता दूँ? मैं आपको स्पष्ट कह दूँ? ये गुरु तो फल नहीं देते, आपकी श्रद्धा ही फल देती है। गुरु चाहे जैसे होंगे, परंतु अपनी दृष्टि फल देती है। यह मूर्ति भी फल नहीं देती, आपकी श्रद्धा ही फल देती है और जैसी-जैसी स्ट्रोंग आपकी श्रद्धा, वैसा ही तुरंत फल मिलता है!

ऐसा है, इस जगत् में श्रद्धा आती है और उड़ जाती है। एक सिर्फ ज्ञानी पुरुष ही ऐसे हैं कि जो श्रद्धा की ही मूर्ति हैं, सभी को श्रद्धा आ जाती है। उन्हें देखते ही, बात करते ही श्रद्धा आ जाती है। ज्ञानी पुरुष श्रद्धा की मूर्ति कहलाते हैं। वे तो कल्याण कर देते हैं! नहीं तो फिर भी आपकी श्रद्धा ही फल देती है।

श्रद्धा रखें या आनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : मैंने सभी धर्मों में अपनी दृष्टि से जाँच करके देख लिया है, परंतु मुझे आज तक कहीं भी श्रद्धा नहीं उपजी, वह हक़ीक़त है। ऐसा क्यों होता होगा? वहाँ क्या करें?

दादाश्री : परंतु श्रद्धा उपजे वैसा स्थान चाहिए न? तब तक तो श्रद्धा हितकारी जगह पर या अहितकारी जगह पर बैठती है, वह देख लो। हमें हितकारी पर श्रद्धा बैठती हो, दृढ़ होती हो तो हर्ज नहीं है। बाकी अहितकारी पर श्रद्धा नहीं बैठनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मुझे किसी भी प्रकार से, किसी भी धर्म या व्यक्ति

में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती। इसका कारण क्या है? उच्च कक्षा के कहे जाने वाले संतों के सत्संग में भी शांति अनुभव नहीं होती, उसमें दोष किसका?

दादाश्री : जहाँ सच्चा सोना मानकर हम गए, वहाँ रॉल्ड गोल्ड निकला, तब फिर श्रद्धा ही नहीं बैठती न! फिर दूध का जला हुआ व्यक्ति, छाछ भी फूँककर पीता है!

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा तो गुरु पर रखनी चाहिए न?

दादाश्री : नहीं, श्रद्धा रखनी पड़े वैसा नहीं है, श्रद्धा आनी चाहिए! श्रद्धा रखनी पड़े, वह गुनाह है। श्रद्धा हमें आनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : गुरु पर श्रद्धा रखें, अधिक श्रद्धा रखें, तो उस श्रद्धा से हमें अधिक प्राप्ति होगी न?

दादाश्री : परंतु ऐसा है न, रखी हुई श्रद्धा नहीं चलेगी। श्रद्धा हममें आनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अधिकतर लोगों के पास जाएँ तब पहले क्या कहते हैं कि 'आप श्रद्धा रखो।'

दादाश्री : तब मैं श्रद्धा रखने को मना करता हूँ। श्रद्धा रखना ही मत मुझ पर बिल्कुल भी। श्रद्धा किसी भी जगह पर नहीं रखनी है। श्रद्धा तो सिर्फ बस में बैठते समय रखना, गाड़ी में बैठते समय रखना। परंतु इन मनुष्यों पर अधिक श्रद्धा मत रखना। श्रद्धा तो हमें आनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : क्यों?

दादाश्री : पीछे गोंद हो, तब टिकट चिपकेगी न? बिना गोंद के चिपकेगी क्या? मैं जब पच्चीस वर्ष का था तब एक महाराज जी के पास गया था। वे मुझे कहने लगे, 'वह तो भाई, श्रद्धा रखो तो आपको यह सब समझ में आएगा, आप मुझ पर श्रद्धा रखना!' 'कितने समय तक?' तब कहा, 'छह महीने।' मैंने कहा, 'साहब अभी ही नहीं आ रही है न! ऐसा कोई गोंद लगाइए कि जिससे मेरी टिकट चिपक जाए, यह तो मैं चिपकाता हूँ, श्रद्धा चिपकाता हूँ और उखड़ जाती है, श्रद्धा

चिपकाता हूँ और उखड़ जाती है। आप ऐसा कुछ बोलिए कि मुझे श्रद्धा आए।' आपको क्या लगता है? श्रद्धा आनी चाहिए या रखनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : आनी चाहिए।

दादाश्री : हाँ, आनी चाहिए। 'कुछ बोलिए आप' ऐसा मैंने कहा। तब वे कहने लगे, 'ऐसा तो होता होगा? श्रद्धा रखनी पड़ेगी। ये सभी लोग श्रद्धा रखते हैं न?' मैंने कहा, 'मुझे ऐसा रास नहीं आएगा। ऐसे ही थूक लगाकर चिपकाई हुई श्रद्धा कितने दिन रहेगी? उसके लिए तो गोंद चाहिए, एकदम से चिपक जाए। ताकि फिर से उखड़े ही नहीं ना! कागज़ फट जाए, परंतु वह नहीं उखड़े। ऐसा जो कहे कि, 'आपका गौंद कम है।' तो हमें कहना चाहिए कि, 'नहीं, गोंद आपको लगाना है, टिकट मेरी है।' यह तो आप गोंद चुपड़ते नहीं हैं, और मैं एन्वेलप (लिफ़ाफा) पर टिकट लगाता हूँ न, तो स्टेम्प (मुहर) लगाने से पहले तो टिकट नीचे गिर जाती है और फिर वहाँ जुर्माना भरना पड़ता है। आप टिकट के पीछे कुछ लगाओ। गोंद खत्म हो गया हो तो लेई लगाओ, तो चिपकेगी।' यानी श्रद्धा तो वह कि चिपकाने से चिपक जाए, वापस उखड़े ही नहीं। ऊपर मुहर मारते रहें तो मुहर थक जाए, लेकिन टिकट नहीं उखड़े।

वहाँ श्रद्धा आ ही जाती है

प्रश्नकर्ता : यह श्रद्धा किस आधार पर आती है?

दादाश्री : गुरु के चारित्र के आधार पर आती है। चारित्रबल होता है! जहाँ वाणी, वर्तन और विनय मनोहर हों, वहाँ श्रद्धा बैठानी ही नहीं होती, श्रद्धा बैठ ही जानी चाहिए। मैं तो लोगों से कहता हूँ न, यहाँ श्रद्धा रखना ही मत, तो भी श्रद्धा हो ही जाती है। दूसरी जगहों पर रखी हुई श्रद्धा 'ऐसे' करें न, तो उखड़ जाती है तुरंत। इसलिए जहाँ वाणी, वर्तन और विनय मनोहर हों, मन का हरण हो वैसे हों, तब सच्ची श्रद्धा बैठती है।

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा बैठने के लिए मुख्य वस्तु वाणी है?

दादाश्री : वह बोले न, तो तुरंत हमें श्रद्धा आ जाती है कि

'ओहोहो, ये कैसी बातें करते हैं!' उनके बोल पर श्रद्धा बैठ जाती है न, तब तो काम ही निकल गया। फिर एक बार श्रद्धा बैठे और एक बार नहीं बैठे, वैसा नहीं चलेगा। हम जब भी जाएँ, तब वे बोलें तो हमें श्रद्धा आ जाए। उनकी वाणी ऐसी फर्स्ट क्लास होती है। भले ही साँवले हों और चेचक के दाग़ हों, लेकिन वाणी फर्स्ट क्लास बोलते हों तो हम समझ जाएँगे कि यहाँ श्रद्धा बैठेगी।

प्रश्नकर्ता : फिर, और क्या-क्या होना चाहिए, श्रद्धा आए उसके लिए?

दादाश्री : प्रभावशाली ऐसे होते हैं कि देखते ही दिल को ठंडक हो जाए। यानी देहकर्मी होने चाहिए। हम कहें कि भले बोलो मत, परंतु ऐसा लावण्य दिखाओ कि मुझे श्रद्धा आ जाए। परंतु यह तो लावण्य भी नहीं दिखता, फिर श्रद्धा कहाँ से आए? इसलिए यदि आप वैसे देहकर्मी हैं, तो मैं आपके प्रति आकर्षित हो जाऊँगा। मुझे उल्लास ही नहीं आता न, आप पर। यदि आपका मुँह सुंदर होता तो भी शायद उल्लास आता। परंतु चेहरे भी सुंदर नहीं हैं, शब्द भी सुंदर नहीं हैं। यानी, न तो प्रभावशाली हैं, न ही बोलना आता है। ऐसा नहीं चलेगा यहाँ पर तो, या फिर ज्ञान सुंदर हो तो भी श्रद्धा आए। मेरा तो ज्ञान सुंदर है इसलिए श्रद्धा बैठती ही है। छुटकारा ही नहीं! और बाहर तो शब्द सुंदर हों, तो भी चलेगा।

अब बोलना नहीं आता हो, तो भी जब हम वहाँ पर बैठें तब भीतर दिमाग़ में ठंडक हो जाए तो समझना कि यहाँ पर श्रद्धा रखने जैसी है। जब जाएँ तब, वहाँ जाएँ तब अकुलाहट (बेचैनी) में से ठंडक हो जाए, तब समझना कि यहाँ श्रद्धा रखने जैसी है। वातावरण शुद्ध हो, तब समझ जाना कि ये पवित्र मनुष्य हैं, तो वहाँ श्रद्धा आएगी।

खोजी तो ऐसा नहीं होता

श्रद्धा तो ऐसी बैठ जानी चाहिए कि हथौड़े मारकर भी हटाएँ तो भी हटे नहीं वैसी। बाकी जो श्रद्धा बिठाते हैं, वह जाती है, उठी हुई

हो उसे श्रद्धा बैठानी पड़ती है और बैठी हुई हो उसे उठानी पड़ती है। ऐसा यह सब उठक–बैठक, उठक–बैठक होता ही रहेगा जगत् में। एक जगह पर छह महीने श्रद्धा रही, तो वहाँ दूसरी जगह पर दो वर्ष श्रद्धा रही, तो किसी जगह पर पाँच वर्ष श्रद्धा रही, परंतु उठ जाती है वापस।

इसलिए श्रद्धा तो इस जगत् में रखना नहीं, जहाँ रखोगे वहाँ फँसोगे। श्रद्धा अपने आप आए, तो ही 'वहाँ' बैठना। श्रद्धा आनी चाहिए। 'रखी हुई' श्रद्धा कितने दिन टिकेगी?

एक सेठ ने कहा, 'मुझे तो महाराज जी पर बहुत श्रद्धा है।' मैंने कहा, 'आपको किसलिए श्रद्धा है? आइए सेठ, आइए सेठ कहकर सब की उपस्थिति में बुलाते हैं न, इसलिए आपको श्रद्धा बैठ ही जाएगी न!' जो खोजी व्यक्ति हो, वह ऐसी श्रद्धा बिठाएगा? मैं तो खोजी था। मैंने तो महाराज जी से कह दिया था कि, 'ऐसा कुछ बोलिए कि मुझे श्रद्धा बैठ जाए। आप अच्छा–अच्छा बोलते हैं कि आइए अंबालालभाई, आप बड़े कॉन्ट्रैक्टर हैं, ऐसे हैं, वैसे हैं, वह मुझे पसंद नहीं है। आप मीठा–मीठा बोलकर श्रद्धा बैठाओ, वह मीनिंगलेस बात है। मुझे गालियाँ देकर भी ऐसा कुछ बोलिए कि मुझे श्रद्धा बैठे।' बाकी, यह 'आओ, पधारो' ऐसा कहें तो लोगों को धीरे–धीरे श्रद्धा बैठती है। इसलिए 'यहाँ अपने को अच्छा है' ऐसा वे कहेंगे।

प्रश्नकर्ता : परंतु पढ़े–लिखे विद्वान लोग बात को तुरंत समझ जाते हैं न?

दादाश्री : हाँ, परंतु सभी पढ़े–लिखे लोग तुरंत समझ जाते हैं कि यह सब झूठ है, झूठ कब तक चलाते हैं लोग?

यह तो श्रद्धा बैठ जाए, इसलिए तो 'आइए फलाँ सेठ, आइए, आइए' कहेंगे। परंतु इस सेठ को बुलाते रहते हैं और क्यों फलाँभाई को नहीं बुलाते? मन में समझते हैं कि 'ये सेठ किसी दिन काम आएँगे।' कोई चश्मे मँगवाने हों, कुछ चाहिए होगा तो काम के हैं। अब वे सेठ वैसे तो कालाबाज़ार करते होंगे, ऐसा महाराज जी जानते हैं। परंतु वे मन में समझते हैं कि 'हमें क्या? कालाबाज़ार करे, तो वह भुगतेगा।

परंतु हमें चश्मे मँगवाने हैं न!' और सेठ क्या समझते हैं कि, 'कोई हर्ज नहीं। देखो न, महाराज जी मान देते हैं न, अभी तक! हम कुछ बिगड़ नहीं गए हैं।' वह बिगड़ गया कब मानता है? कि महाराज जी कहेंगे, 'एय, आप ऐसे धंधे करते हों, तो यहाँ मत आना।' तब ऐसा मन में होता है कि व्यवसाय बदलना पड़ेगा। क्योंकि महाराज जी आने नहीं देते। 'आइए, आइए' कहकर बैठाई हुई श्रद्धा टिकती होगी? ऐसी श्रद्धा कितने दिन रहेगी? छह-बारह महीनों तक रहेगी और फिर उतर जाएगी।

ऐसी श्रद्धा के बिना मोक्ष नहीं है

यानी श्रद्धा तो, मैं गालियाँ दूँ तो भी रहे, वह सच्ची श्रद्धा है। मान के कारण थोड़ी देर श्रद्धा टिकी हो, परंतु वह उखड़ जाती है फिर। अपमान करे वहाँ पर भी श्रद्धा बैठती है, तब वह टिकी हुई श्रद्धा उखड़ती नहीं। आपको समझ में आया न? एकबार श्रद्धा बैठने के बाद हमें गालियाँ दें, मारें, तो भी अपनी श्रद्धा टूटे नहीं, वह अविचल श्रद्धा कहलाती है। ऐसा होता है क्या? और वैसी श्रद्धा बैठे बगैर मोक्ष नहीं है। यह आपको गारन्टी से कहता हूँ।

बाकी, हमें अनुकूल नहीं आया और घर चले गए, वह श्रद्धा ही नहीं कहलाती। यानी आपकी अनुकूलता ढूँढ रहे हो या मोक्ष ढूँढ रहे हो? अनुकूल नहीं आया और चले गए वह श्रद्धा कहलाएगी? आपको कैसा लगता है? श्रद्धा मतलब तो, सौंप दिया सबकुछ!

'यहाँ' पर श्रद्धा आती ही है

और मैं ऐसा नहीं कहता कि, 'मुझ पर आप श्रद्धा रखो।' क्योंकि मैं श्रद्धा रखवाने वाला मनुष्य ही नहीं हूँ। ये पचास हज़ार लोग आते होंगे तो हमारी बात के लिए श्रद्धा रखने को मना करते हैं। सभी को कह देते हैं कि हमारा एक अक्षर भी मत मानना। हम पर श्रद्धा रखना ही नहीं। आपका आत्मा कबूल करे तो ही हमारी बात को स्वीकार करना। नहीं तो हमें स्वीकार करवाना है, वैसा कुछ नहीं है।

हमारी वाणी से उसे श्रद्धा ज़रूर बैठती है। क्योंकि सत्य वस्तु

जानने को मिलती है, इसलिए श्रद्धा बैठती है, वह फिर जाती नहीं। यह तो सत्य सुनने को मिला नहीं, इसलिए श्रद्धा बैठती नहीं है। सत्य सुनने को मिले तो श्रद्धा बैठे बगैर रहेगी ही नहीं। हम मना करें तो भी श्रद्धा बैठ ही जाती है। क्योंकि सच्ची बात तो मनुष्य छोड़ने को तैयार नहीं है, गालियाँ दो फिर भी। आप 'श्रद्धा नहीं रखनी है' ऐसा निश्चित करो न तो भी फिर से श्रद्धा यहाँ पर ही आ जाएगी। आप कहो कि 'अपना था वह क्या बुरा था?' परंतु फिर भी श्रद्धा हम पर वापस आएगी ही और इसलिए ही उसके कितने ही काल की श्रद्धा, अनंत जन्मों की श्रद्धा एकदम से तोड़ देने को तैयार हो जाता है। किसलिए? उसे ऐसी श्रद्धा ही बैठ जाती है कि यह अभी तक सुना हुआ-जाना हुआ सबकुछ गलत निकला। अभी तक सुना हुआ गलत ठहरा, तब हमें ऐसा नहीं लगता कि यह तो अभी तक की मेहनत सब बेकार जा रही है?

प्रश्नकर्ता: हाँ।

दादाश्री : क्योंकि सच्ची बात पर श्रद्धा बैठती है। बैठे बगैर छुटकारा ही नहीं न!

अंतरपट, रोकें श्रद्धा को

फिर भी कुछ लोगों को श्रद्धा नहीं आती, उसका क्या कारण है? क्योंकि खुद ने ऊपर से परदे डाले हुए हैं। सिर्फ ये लोभी सेठों को और इन अहंकारी जानकारों को श्रद्धा नहीं आती। बाकी, इन मज़दूरों को तो तुरंत श्रद्धा आ ही जाती है। क्योंकि मज़दूरों में जानने की ऐसी अकड़ नहीं होती और बैंक का लोभ नहीं होता। ये दो नहीं हों, उसे पहचान में आ ही जाते हैं। इन दो रोगों के कारण तो रुका हुआ है लोगों का। 'मैं जानता हूँ' उसके अंतराय डाले हैं। नहीं तो ज्ञानी पुरुष पर तो आसानी से श्रद्धा बैठ जाए। यह तो खुद ने अंतरपट डाले हैं। पार्टिशन वॉल रखी हुई है, इसलिए! ये तो होशियार लोग न! कोई कच्चे नहीं पड़ते, परफेक्ट (पक्के) हो चुके होते हैं।

और मेरा शब्द हर एक व्यक्ति, जो देहधारी मनुष्य है और जिसे बुद्धि की साधारण समझ है, बुद्धि डेवलप हो चुकी है, उसे अवश्य कबूल

करना ही पड़ता है। क्योंकि मेरा शब्द आवरणभेदी है, वह सभी आवरणों को तोड़कर आत्मा को ही पहुँचता है। आत्मा का आनंद उत्पन्न करे वैसा है। इसलिए जिसमें आत्मा है, वह फिर वैष्णव हो या जैन हो या चाहे जो हो, जो मेरी यह बात सुनेगा, उसे श्रद्धा बैठनी ही चाहिए। फिर भी *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) करनी हो, जान-बूझकर उल्टा बोलना हो, वह अलग बात है। आड़े होते हैं न? समझते हैं, जानते हैं, फिर भी आड़ा बोलते हैं न? हिन्दुस्तान में आड़े हैं क्या लोग? आपने देखे हैं?

प्रश्नकर्ता : अधिकतर तो वैसे ही हैं।

दादाश्री : वह *आड़ाई* निकालनी है। कोई जान-बूझकर मतभेद डाले तो मैं उसे मुँह पर कहता हूँ कि, 'आपका आत्मा कबूल करता है, लेकिन आप टेढ़ा बोलते हैं यह।' ऐसा मैं कहूँ तब फिर वह समझ जाता है और कबूल करता है कि खुद टेढ़ा बोल रहा है। क्योंकि टेढ़ा बोले बगैर रहता नहीं न! किसलिए टेढ़ा बोलता है? माल भरा हुआ है उसने, *आड़ाई* करने का माल भरा हुआ है। इसलिए जिसका पुण्य टेढ़ा हो, उसे श्रद्धा नहीं बैठती। वर्ना, ज्ञानी पुरुष तो श्रद्धा की मूर्ति कहलाते हैं।

ज्ञानी, श्रद्धा की प्रतिमा

ज्ञानी पुरुष ऐसे होते हैं कि उस मूर्ति को देखते ही श्रद्धा बैठ जाती है। श्रद्धा बैठ ही जाती है वैसी मूर्ति! श्रद्धेय कहलाते हैं, पूरे जगत् के लिए, पूरे वर्ल्ड के लिए! यह काल ऐसा विचित्र है कि श्रद्धा की मूर्ति नहीं मिलती। सभी मूर्तियाँ मिलती हैं, परंतु श्रद्धा की मूर्ति- निरंतर श्रद्धा बैठे वैसी मूर्ति नहीं मिलती। कभी ही जगत् में श्रद्धा की मूर्ति का जन्म होता है। श्रद्धा की मूर्ति अर्थात् देखते ही श्रद्धा आ जाए। फिर कुछ पूछना नहीं पड़ता, ऐसे ही श्रद्धा आ जाती है। उसे शास्त्रकारों ने श्रद्धा की मूर्ति कहा है। किसी समय ही ऐसे अवतार अवतरित होते हैं, तब कल्याण हो जाता हैं! यह हमारा अवतार ही ऐसा है कि हम पर उसे श्रद्धा बैठ ही जाती है।

श्रद्धा की प्रतिमा बनना चाहिए। नालायक मनुष्य भी एक बार चेहरा देखे कि तुरंत श्रद्धा आ जाए। उस घड़ी उसके भाव, उसकी

परिणति पलट जाए। देखते ही पलट जाए। वैसी प्रतिमा, श्रद्धा की प्रतिमा कभी-कभार ही जन्म लेती है। तीर्थंकर साहब थे वैसे!

इसलिए कैसा हो जाना चाहिए? श्रद्धा की प्रतिमा हो जाना चाहिए। परंतु श्रद्धा नहीं आए, उसका कारण क्या होगा? खुद ही! ये तो कहेगा, 'लोग श्रद्धा ही नहीं रखते, तो क्या करूँ?' अब जिन गुरु में बरकत नहीं हो, वे लोग ऐसा कहते रहते हैं कि 'मुझ पर श्रद्धा रखो।' अरे, लोगों को तुझ पर श्रद्धा ही नहीं आती, उसका क्या? तू वैसा बन जा, श्रद्धा की प्रतिमा, कि लोगों को देखते ही तुझ पर श्रद्धा बैठे।

फिर वैराग्य किस तरह आए?

प्रश्नकर्ता : जो लोग उपदेश देते हैं, उनका आचरण उनके उपदेश से अलग होता है, तो श्रद्धा कहाँ से उपजे? ऐसा भी होता है न?

दादाश्री : इसलिए यह श्रद्धा बैठनी वह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। रंजन के लिए ही ये सब उपदेश होते हैं। क्योंकि सच्चे उपदेश नहीं हैं यह। यह तो खुद के मनोरंजन हैं सारे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, सिर्फ उपदेश रंजन होते हैं और इसीलिए ही तो वैराग का रंग लगता नहीं है।

दादाश्री : अब, वैराग्य का रंग कहाँ पर लगता है? कौन-सी वाणी से लगता है? जो वाणी सत्य हो उससे, जिस वाणी का उल्टे रास्ते उपयोग नहीं होता हो, जो वाणी सम्यक् वाणी होती है, जिसमें वचनबल हो, वहाँ रंग लगेगा। बाकी, ऐसे वैराग्य किस तरह आए? वैसा तो किताबें बोलती ही हैं न! जिस तरह किताबें बोलती हैं तो भी उसे वैराग्य नहीं आता, वैसे ही ये गुरु बोलते हैं उससे वैराग्य नहीं आता। किताबों जैसे गुरु हो गए हैं। यदि हमें वैराग्य नहीं आए तो समझना कि ये किताब जैसे गुरु हैं। वचनबल होना चाहिए न!

उसमें भूल उपदेशक की

प्रश्नकर्ता : कईबार ऐसा होता है कि उपदेश सुनने के लिए

पच्चीस लोग बैठे हों, उनमें से पाँच को वह स्पर्श कर जाता है और बाकी के बीस वैसे के वैसे कोरे रह जाते हैं। उसमें उपदेशक की भूल है या ग्रहण करने वाले की भूल है?

दादाश्री : इसमें सुनने वाले की क्या भूल है बेचारे की? उपदेशक की भूल है। सुनने वाले तो हैं ही ऐसे। वे तो साफ-साफ ही कहते हैं न कि, 'साहब, हमें तो कुछ आता नहीं, इसलिए तो आपके पास आए हैं।' लेकिन यह तो उपदेशकों ने रास्ता ढूँढ निकाला है, खुद का बचाव ढूँढ लिया है कि 'आप ऐसे नहीं करते, आप ऐसे...' ऐसा नहीं कहना चाहिए। वह आपके पास हेल्प के लिए आए और आप ऐसा करते हैं? यह तो उपदेशकों की भूल है। यह स्कूल के जैसी बात नहीं है। स्कूल की बात अलग है। स्कूल में जैसे बच्चे कुछ नहीं करते, वह अलग है और यह अलग है। ये तो आत्महित के लिए आए हैं, जिसमें दूसरी किसी तरह की बुरी दानत नहीं है। संसार हित के लिए नहीं आए हैं। इसलिए इन उपदेशकों को ही सबकुछ करना चाहिए।

मैं तो सभी से कहता हूँ कि, 'भाई, आपसे कुछ भी नहीं हो सके तो वह मेरी भूल है। आपकी भूल नहीं है।' आप मेरे पास रिपेयर करवाने आए कि 'मेरा यह रिपेयर कर दीजिए।' फिर वह रिपेयर नहीं हुआ तो उसमें भूल किसकी?

प्रश्नकर्ता : पच्चीस लोग बैठे हों, पाँच को प्राप्ति हो और बीस को प्राप्ति नहीं हो, तो उसमें गुरु की ही भूल है?

दादाश्री : गुरु की ही भूल!

प्रश्नकर्ता : क्या भूल होती है उनकी?

दादाश्री : उनका चारित्रबल नहीं है। उन्हें चारित्रबल विकसित करना चाहिए। रात को बर्फ रखा हुआ हो, तो समझदार या नासमझ सभी पर उसका असर नहीं होगा? ठंडक लगती रहेगी न? अर्थात् चारित्रबल चाहिए। परंतु यह तो खुद का चारित्रबल नहीं है। इसलिए इन लोगों ने खोज (!) की, और फिर शिष्यों पर चिढ़ते रहते हैं।

उसका कोई अर्थ ही नहीं है न! वे तो बेचारे हैं ही ऐसे। लेने आए हैं, उनके साथ झंझट और क्लेश नहीं करते!

अनुभव की तो बात ही अलग

प्रश्नकर्ता : खुद को अनुभव से ज्ञान प्राप्त हो और दूसरा उपदेश दे और ज्ञान प्राप्त हो, वे दोनों ज़रा समझाइए।

दादाश्री : उपदेश का तो, हम लोग शास्त्र में पढ़ते हैं न, उपदेश उसके जैसा है। परंतु उपदेशकों में यदि कभी कोई पुरुष वचनबल वाला हो कि जिसका शब्द अपने अंदर घर कर जाए और वह निकले नहीं बारह-बारह महीनों तक, तो उस उपदेश की बात ही कुछ और है। वर्ना यह जिनका उपदेश एक कान में से घुसे और दूसरे कान में से निकल जाए, वैसे उपदेश की कोई वेल्यु नहीं है। वह और पुस्तक दोनों एक-से हैं।

जिसका उपदेश और जिसके वाक्य, जिसके शब्द भीतर महीनों तक गूंजते रहें, उस उपदेश की खास ज़रूरत है! वह अध्यात्म विटामिन वाला उपदेश कहलाता है। वह कभी-कभार ही हो सकता है। परंतु वे खुद चरित्रबल वाले होने चाहिए, व्यवहार चारित्र वाले! शीलवान होने चाहिए, जिनके कषाय मंद हो चुके होने चाहिए।

शब्दों के पीछे करुणा ही प्रवाहित

बाकी, ये सब जो उपदेश बोलते हैं न कि, 'ऐसा करो, वैसा करो।' परंतु उनके पैर पर आए, उस घड़ी वे चिढ़कर खड़े हो जाते हैं। यह तो उपदेश की बातें किया करते हैं। वास्तव में उपदेश देने का अधिकार किसे है? जो चिढ़ता नहीं हो, उसे यह सारा उपदेश देने का अधिकार! यह तो ज़रा-सा सामने वाले ने कहा तो तुरंत फन फैलाता है, 'मेरे जैसा जानकार, मैं ऐसा और मैं वैसा!' वह भ्रांति में ही बोलता रहता है। 'मैं, मैं, मैं, मैं....' इसलिए सुधरता नहीं है न!

यह तो वीतराग मार्ग कहलाता है। बहुत ही जोखिमदारी वाला मार्ग है! एक शब्द भी बोलना बहुत जोखिमदारी वाली वस्तु है।

उपदेशकों को तो बहुत जोखिमदारी है अभी। परंतु लोग समझते नहीं हैं, जानते नहीं हैं, इसलिए ये उपदेश देते हैं। अब आप उपदेशक हो या नहीं, वह आप अपने आपको टटोलकर देखो। क्योंकि उपदेशक आर्तध्यान-रौद्रध्यान से मुक्त होना चाहिए। शुक्लध्यान नहीं हुआ हो तो भी हर्ज नहीं। क्योंकि धर्मध्यान की विशेषता बरतती है। परंतु आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों हुआ करते हों, तो जोखिमदारी खुद की है न! भगवान ने कहा है कि यदि क्रोध-मान-माया-लोभ की पूँजी आपके पास *सिलक* (जमापूँजी) में हो, तब तक किसी को उपदेश मत देना।

इसलिए मुझे कहना पड़ा कि यह जो व्याख्यान देते हो, परंतु आपको सिर्फ स्वाध्याय करने का अधिकार है। उपदेश देने का अधिकार नहीं है। फिर भी यदि उपदेश दोगे तो यह उपदेश कषाय सहित होने के कारण नर्क में जाओगे। सुनने वाला नर्क में नहीं जाएगा। मुझे ज्ञानी होकर कठोर शब्द बोलने पड़े हैं। उसके पीछे कितनी करुणा होगी! ज्ञानी को कठोर होने की क्या ज़रूरत है? जिन्हें अहर्निश परमानंद, अहर्निश मोक्ष बरतता हो, उसे कठोर होने की ज़रूरत क्या होगी? परंतु ज्ञानी होकर ऐसा कठोर बोलना पड़ता है कि, 'सावधान रहना, स्वाध्याय करना।' लोगों से ऐसा कह सकते हैं कि, 'मैं स्वाध्याय कर रहा हूँ, आप सुनो।' परंतु कषाय सहित उपदेश नहीं देने चाहिए।

वचनबल तो चाहिए न

मैं आपको उपदेश देता रहूँ तो नहीं सीखोगे। परंतु आप मेरा वर्तन देखोगे तो वह आसानी से आ जाएगा। इसलिए वहाँ पर कोई उपदेश नहीं चलते है। यह तो वाणी बेकार जाती है। परंतु फिर भी हम उसे गलत नहीं कह सकते। यानी किसी का भी गलत नहीं है। परंतु उसका अर्थ कुछ भी नहीं है, सब मीनिंगलेस है। जिस बोल में कुछ वचनबल नहीं, उसे क्या कहेंगे? ऐसा उन्हें साफ-साफ कह दें हम कि 'आपका बोल ही खोटा है। बेकार क्यों जाता है? आपका बोल मुझमें उगना चाहिए। आपका बोल उगता नहीं है।' बोल कितने वर्ष का है? पुराना बोल, वह नहीं उगेगा। वाणी प्योर चाहिए, वचनबल वाली चाहिए। हम कहें कि,

'आपका वचन ऐसा बोलिए कि जिससे मेरे अंदर कुछ हो जाए।' वचनबल तो मुख्य वस्तु है। मनुष्य का वचनबल नहीं हो तो काम का ही क्या?

गुरु तो वे कहलाते हैं कि वे जो वाणी बोलें न, वह हममें अपने आप ही परिणमित हो जाए, वैसी वचनबल वाली हो! यह तो खुद क्रोध–मान–माया–लोभ में होते हैं और हमें उपदेश देते हैं कि 'क्रोध–मान–माया–लोभ छोड़ो।' इसलिए यह सारा माल बिगड़ गया न! सौ में से दो–पाँच अच्छे होंगे। वचनबल अर्थात् मुँह से बोले, वैसा सामने वाले को हो जाए। अब ऐसा वचनबल नहीं हो, वह किस काम का?

मैं तो छोटा था, तब ऐसा कहा करता था कि, 'आप जो उपदेश देते हैं, ऐसा तो पुस्तक भी कहती है। तो आपमें और उसमें फर्क क्या रहा फिर? इससे तो पुस्तक अच्छी। आपके तो फिर ऐसे पैरों में पड़कर झुकना, उसके बदले पुस्तक अच्छी। आप ऐसा कुछ कहिए कि मेरे भीतर परिणमित हो, मेरा चित्त उसमें रहा करे।' यह तो क्या कहते हैं? 'करो, करो, करो, करो।' यह 'करो', तो क्या करूँ? होता नहीं मुझसे और ऊपर से वापस 'करो, करो' करते रहते हैं। इसमें तो वचनबल चाहिए, वचनबल! वे बोलें उतना सामने वाले को हो जाए, तब वे गुरु कहलाएँगे। नहीं तो वे गुरु नहीं कहलाएँगे। ज्ञानी पुरुष तो मोक्ष देते हैं। परंतु गुरु कब कहलाएँगे? वचनबल हो तब। क्योंकि उनके वचन में झूठ–कपट नहीं होता। उनके वचन में वचनबल होता है। आपको समझ में आता है मैं क्या कह रहा हूँ वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ।

दादाश्री : बहुत गहरी बात है। परंतु इन लोगों को किस तरह समझ में आए वह? चलती हैं दुकानें। चलने दो न! हम कहाँ माथापच्ची करें? काल के कारण चल रही हैं।

बाकी, आप जो कहते हैं, वह पुस्तक में कहते हैं। तब आपमें और इसमें फर्क क्या रहा फिर? यदि आप सजीव होते हुए भी कुछ नहीं कर सकते, तो उससे तो यह पुस्तक अच्छी! पावर कुछ होता है या नहीं?

भले मोक्ष का पावर नहीं हो, परंतु संसार व्यवहार का तो होगा न? व्यवहार में भी शांति रहे वैसा कुछ बताइए। आपको यदि शांति हो चुकी होगी, तो हमें होगी। आपको शांति नहीं होगी तो हमें किस तरह होगी फिर?

लेकिन वह तरीक़ा सिखाइए

यह तो गुरु कहेंगे, 'मॉरल और सिन्सियर बन। बी मॉरल और बी सिन्सियर!' अरे, तू मॉरल बनकर आ न! तू मॉरल हो जा न, तब तुझे मुझसे नहीं कहना पड़ेगा। मॉरल होकर मुझे कह तो मैं मॉरल हो जाऊँगा। तुझे देखते ही मॉरल हो जाऊँगा। जैसा देखते हैं, वैसे हम हो ही जाते हैं। परंतु वह खुद ही हुआ नहीं है न!

मुझमें वीतरागता हो वह आप देखो, और एक बार देख लेंगे तो फिर होगा। क्योंकि मैं आपको करके दिखाता हूँ, इसलिए आपको एडजस्ट हो जाता है। यानी मैं प्योर होऊँगा तो ही लोग प्योर हो सकेंगे! इसलिए कम्पलीट प्योरिटी होनी चाहिए।

मैं आपको 'मॉरल बनो' ऐसा नहीं कहता रहता, परंतु 'मॉरल किस तरह हुआ जाता है' वह बताता हूँ। मैं ऐसा कहता ही नहीं कि 'आप ऐसा करो, अच्छा करो, या ऐसे बन जाओ।' मैं तो 'मॉरल कैसे हुआ जाता है' वह बताता हूँ, रास्ता बताता हूँ। जबकि लोगों ने क्या किया है? 'यह रकम और यह जवाब।' अरे, तरीक़ा सिखा न! रकम और जवाब तो किताब में लिखे हुए हैं ही, परंतु उसका तरीक़ा सिखा न! परंतु तरीक़ा सिखाने वाला कोई निकला ही नहीं। तरीक़ा सिखाने वाला निकला होता तो हिन्दुस्तान की यह दशा नहीं हुई होती। हिन्दुस्तान की दशा तो देखो आज! कैसी दशा हो गई है!!!

सच्चे गुरु के गुण

प्रश्नकर्ता : मुझे किस तरह समझना है कि मेरे लिए सच्चे गुरु कौन हैं?

दादाश्री : जहाँ बुद्धि नहीं हो वहाँ और बॉडी की ओनरशिप

नहीं हो, वहाँ पर। ओनरशिप वाले हों तो वे मालिकी वाले और हम भी मालिकी वाले, दोनों टकराएँ! तब काम नहीं होगा।

फिर, जो अपने मन का समाधान करें, वे अपने गुरु। वैसे नहीं मिलें तो दूसरे गुरु का क्या करना है?

वे गुरु तो हमें हर प्रकार से हेल्प करें, वैसे चाहिए। यानी हमें हर एक बात में हेल्प करें। पैसों की मुश्किल में भी हेल्प करें। यदि गुरु महाराज के पास हों तो वे कहें, 'भाई ले जा, मेरे पास हैं।' ऐसा होना चाहिए। गुरु अर्थात् हेल्पिंग, माँ-बाप से भी अधिक हमारा ध्यान रखें, तो उन्हें गुरु कहा जाता है। ये लोग तो छीन लेते हैं। पाँच-पाचस-सौ रुपये झपट लेते हैं।

औरों के लिए जीवन जीते हों, वैसे गुरु होने चाहिए! खुद के लिए नहीं!

फिर गुरु ज़रा शरीर से सुदृढ़ होने चाहिए। ज़रा सुदर्शन होने चाहिए। सुदर्शन नहीं हों तो भी नीरसता होगी। 'इनके यहाँ पर इधर आकर कहाँ बैठना हुआ? वे दूसरे वाले गुरु कितने सुंदर थे!' ऐसा कहता है। इस तरह दूसरों के साथ तुलना करने वाले नहीं हो तो ही गुरु बनाना। गुरु बनाओ तो सोच-समझकर बनाना। बाकी, गुरु बनाने के लिए ही बनाएँ, ऐसा ज़रूरी नहीं है!

और उनमें तो स्पृहा नहीं होती और निःस्पृहता भी नहीं होती। निःस्पृह नहीं हों, तो कोई स्पृहा है उन्हें? नहीं, आपके पौद्गलिक बाबत में यानी भौतिक बाबत में निःस्पृह हैं वे खुद और आत्मा की बाबत में स्पृहा वाले हैं। हाँ, संपूर्ण निःस्पृह नहीं होते वे!

गुरु ऐसे होने चाहिए कि जिन्हें किसी भी चीज़ की इच्छा नहीं हो। वे लक्ष्मी नहीं चाहते हों, और विषय नहीं चाहते हों, दोनों की ज़रूरत नहीं हो। फिर कहें कि, 'मैं आपके पैर दबाऊँगा, सिर दबाऊँगा।' पैर दबाने में हर्ज नहीं है हमें। पैर दबाएँ, सेवा करें।

मोक्ष के मार्ग पर तो उनके गुरु आत्मज्ञानी होने चाहिए। वैसे आत्मज्ञानी गुरु हैं नहीं, इसलिए पूरा केस बिगड़ गया है।

तब कहलाएगा, गुरु मिले

इसलिए मैं तो किसी का सुनता ही नहीं था। क्योंकि उनमें कोई बरकत नहीं दिखती थी, उनके चेहरे पर नूर नहीं दिखता था, उनसे पाँच लोग सुधरे हों तो मुझे दिखाओ कि जिनमें क्रोध-मान-माया-लोभ की कमज़ोरियाँ चली गई हों या मतभेद कम हुए हों।

प्रश्नकर्ता : गुरु सच्चे मिले हैं या नहीं, वह जानने की शक्ति अपनी कितनी?

दादाश्री : पत्नी के साथ मतभेद खत्म हो, तो समझना कि गुरु मिले हैं इन्हें। नहीं तो यह तो पत्नी के साथ भी मतभेद होते ही रहते हैं। रोज़ झगड़े और झगड़े ही चलते रहते हैं, अपने आप। यदि गुरु मिलें और कोई ज़्यादा फर्क नहीं आया, तो काम का ही क्या वह?

यह तो क्लेश जाता नहीं, कमज़ोरियाँ जाती नहीं और कहते हैं कि 'मुझे गुरु मिल गए हैं।' अपने घर का क्लेश जाए, कलह जाए, तब गुरु मिले कहा जाएगा। नहीं तो कहा ही कैसे जाए कि गुरु मिले हैं? यह तो अपना पक्ष मज़बूत कराते हैं कि 'हम इस पक्ष के हैं।' उस तरह अपना पक्ष मज़बूत करता है और गाड़ी चलाता है। अहंकार इस ओर का था, उसे उस ओर मोड़ता है। हमें छह ही महीने सच्चे गुरु मिले हों, तो गुरु इतना तो सिखाएँगे ही कि जिससे घर में क्लेश चला जाए। सिर्फ घर में से ही नहीं, मन में से भी क्लेश चला जाए। मन में क्लेशित भाव नहीं हों और यदि क्लेश होते हों, तो उस गुरु को छोड़ दो। फिर दूसरे गुरु ढूँढ निकालना।

बाकी, चिंता-*उपाधि* हों, घर में मतभेद हों, वे सारी उलझनें यदि नहीं गई हों तो वे गुरु किस काम के? उन गुरु से कहें कि, 'अभी तक मुझे गुस्सा आता है घर में। मैं तो बेटे-बेटी पर चिढ़ जाता हूँ, वह बंद करवा दीजिए। नहीं तो फिर अगले साल केन्सल कर दूँगा।' गुरु को ऐसा कहा जा सकता है या नहीं कहा जा सकता? आपको कैसा लगता है? नहीं तो ये तो गुरुओं को भी 'मिठाई' मिलती रहती है आराम से, किश्तें मिलती ही रहती हैं न! यानी यह सारा

अंधेर चल रहा है हिन्दुस्तान में। अपने हिन्दुस्तान देश में ही नहीं, परंतु सब ओर ऐसा ही हो गया है।

इस तरह सच्चा 'धन' परखा जाए

प्रश्नकर्ता : सच्चे गुरु हैं, यह जानने के लिए कोई पक्की पहचान है क्या?

दादाश्री : पहचान में तो, हम गालियाँ दें, तो क्षमा देते नहीं, परंतु सहज क्षमा होती है। हम मारें तो भी क्षमा होती है, चाहे जैसा अपमान करें तो भी क्षमा होती है। फिर, सरल होते हैं। उन्हें हमारे पास से कोई लालच नहीं होता। अपने पास से पैसे से संबंधित कोई माँग नहीं करते। हम पूछें, उस प्रश्न का समाधान करते हैं और यदि उन्हें छेड़ें, परेशान करें, तो भी वे फन नहीं फैलाते। शायद कभी भूलचूक हो गई हो तो भी वे फन नहीं फैलाते। फन फैलाएँ उन्हें क्या कहते हैं? फनधारी साँप कहते हैं। ये सारी पहचान बताई हैं उनकी।

नहीं तो फिर गुरु की जाँच करनी चाहिए और फिर गुरु बनाने चाहिए। चाहे जिसे गुरु बना बैठें, उसका अर्थ ही क्या है फिर!

प्रश्नकर्ता : कौन कैसे हैं, वह किस तरह पता चले?

दादाश्री : पहले के जमाने के एडवर्ड के रुपये और रानी छाप के रुपये आपने देखे हैं क्या? अब वह रुपया हो न तो भी ये लोग विश्वास नहीं रखते थे। अरे, रुपये हैं, व्यवहार में उसका चलन है न? परंतु नहीं, तो भी उसे पत्थर या लोहे के ऊपर पटकते थे! अरे, लक्ष्मी को मत पटक। परंतु फिर भी पटकते थे वे। क्यों पटकते होंगे? रुपया खनकाए तब कलदार है या खोटा, वह पता चलेगा या नहीं चलेगा? ऐसे खनकाए कि खननन्...' बोले तो हम उसे अलमारी में-तिजोरी में रख देते हैं और यदि खोटा निकले तो काट देते हैं या फैंक देते हैं। अर्थात् ऐसा टेस्ट करके देखना, रुपया खनकाकर देख लेना। उसी तरह गुरु का हमेशा ही टेस्ट करो।

प्रश्नकर्ता : परीक्षा करें?

दादाश्री : टेस्ट! परीक्षा करनी तो आएगी नहीं। बालक हो, वह प्रोफेसर की परीक्षा किस तरह लेगा?

प्रश्नकर्ता : तो टेस्ट और परीक्षा में क्या फर्क है?

दादाश्री : टेस्ट में और परीक्षा में बहुत फर्क है। टेस्ट में तो हमें इतना ही कहना है कि, 'साहब, आपने कहा, परंतु एक भी बात मुझे सच्ची नहीं लगती।' इतना ही बोलो। उसका टेस्ट एकदम से निकलेगा। वे फन फैलाएँगे। तब हम समझ जाएँगे कि यह फनीधर साँप है, यह दुकान अपने लिए नहीं है। दुकान बदलो। दुकान बदलने का पता नहीं चल जाएगा हमें?

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, गुरु से ऐसा कहना अविनय नहीं कहलाएगा?

दादाश्री : ऐसा है, कि अविनय नहीं करें तो हम कब तक वहीं के वहीं बैठे रहें? हमें सिल्क (रेशम) चाहिए 'डबल घोड़े' का सिल्क चाहिए, तो हर एक दुकान में घूमते-घूमते जाएँ तो कोई कहेगा, 'भाई, उसकी दुकान पर, खादीभंडार में जाओ।' अब, वहाँ जाकर हम बैठे रहें लेकिन कुछ पूछें-करें नहीं, तो वहाँ कब तक बैठे रहें हम? इसके बदले तो पूछें कि, 'भाई, डबल घोड़े का सिल्क हो तो मैं बैठा रहूँ, फिर छह घंटे बैठा रहूँगा, लेकिन है क्या आपके पास?' तब वह कहे, 'ना, नहीं है।' तब हम उठकर दूसरी दुकान पर चले जाएँ।

फिर भी यहाँ पर एक गुनाह होता है वापस। इतनी मेरी समझ का आधार लेकर छिटकना नहीं है। जिन्हें आपने ऐसा कहा कि, 'आपका यह ठीक नहीं है।' तो उनके मन को दु:ख हुआ, वह अविनय माना जाता है। इसलिए उनसे कहें कि, 'साहब, कभी-कभी मेरा दिमाग़ इस तरह खिसक जाता है।' तब वे कहेंगे, 'कोई हर्ज नहीं, कोई हर्ज नहीं।' तो भी भीतर उनका मन दु:खता रहता हो तो फिर हमें पाँच-पचास रुपये जेब में रखने पड़ेंगे और उनसे कहना चाहिए कि, आपको क्या चश्मे चाहिए? जो चाहिए वह बताइए।' नहीं तो फिर हम कहें, 'साहब, एक शाल है, इसे स्वीकार कीजिए। मेरे सिर पर हाथ रख

दीजिए।' वह शाल दे दी, यानी वे खुश! तब हम समझ जाएँगे कि इस रुपये को खनकाया तो इस रुपये ने दावा नहीं किया जबकि इसमें ये दावा कर रहे हैं, इसलिए हम शाल देकर आ जाएँगे। इतना सौ रुपये का नुकसान उठाना पड़ेगा। लेकिन हम उस दुकान में से–फँसाव में से तो निकल गए न! मेरा क्या कहना है कि कब तक फँसे रहेंगे?

और जिन्हें राग–द्वेष नहीं होते, वे अंतिम गुरु! खाना परोसें और फिर थाली उठा लें और उनकी आँखों में कोई फर्क नहीं दिखे, आँखों में क्रोध नहीं दिखे तो समझना कि ये हैं 'लास्ट' गुरु! नहीं तो, यदि क्रोध दिखे तो उस बात में माल ही नहीं न! आपको समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ।

दादाश्री : यानी परीक्षा के लिए नहीं, परंतु जाँच करनी चाहिए। सिर्फ परीक्षा के लिए तो बुरा दिखेगा। परंतु ज़रा ध्यान रखना चाहिए कि क्यों इनकी आँखों में ऐसा हो रहा है! अब, यह थाली उठा ली और आँखों में परिवर्तन हो तो तुरंत कहना, 'नहीं, दूसरी चाँदी की थाली ले आता हूँ।' परंतु हमें देख लेना है कि, 'आँखों में बदलाव होता है या नहीं!' पता तो लगाना पड़ेगा न?

हम धोखा खाकर माल लाएँ वह किस काम का? माल लेने गएँ, तो माल तो उसे देखना पड़ेगा न! ऐसे देखना नहीं पड़ेगा? ज़रा खींचकर देखना पड़ेगा न? फिर फटा हुआ निकले तब लोग कहेंगे, 'आपने शाल देखकर क्यों नहीं ली थी? ऐसा कहते हैं या नहीं कहते? इसलिए श्रीमद् राजचंद्र कहते हैं न, गुरु अच्छी तरह देखकर बनाना, जाँच करके बनाना! नहीं तो भटका देंगे। ऐसे ही चाहे जिसे चिपट पड़े वह काम में नहीं आएगा न! इसी तरह धोखा खाकर फिर क्या होगा? यानी सब ओर देखना पड़ेगा।

खुली करीं बातें, वीतरागता से

इस कलियुग में अच्छे गुरु नहीं मिलेंगे और गुरु आपको पकाकर खा जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। परंतु अपवाद स्वरूप एक तो सच्चे गुरु होंगे न?

दादाश्री : कोई अच्छे गुरु हों तब वह डब्बा होगा। डब्बा मतलब समझता नहीं होगा कुछ भी। तो उस बिना समझ के गुरु का क्या करें फिर? समझ होती है, तब दुरुपयोग करें, वैसे होते हैं। इसलिए इसके बदले तो घर पर ये पुस्तकें हों, वे पकड़कर उनका मनन करते रहना अच्छा। इसलिए जैसे अभी हैं, वैसे गुरु नहीं चलेंगे। इसके बदले गुरु नहीं बनाना अच्छा है, गुरु के बिना वैसे ही रहना अच्छा।

प्रश्नकर्ता : हमारी संस्कृति के अनुसार बिना गुरु का मनुष्य *नगुणो* कहलाता है।

दादाश्री : कहाँ सुना है आपने यह?

प्रश्नकर्ता : संत पुरुषों के पास से सुना था।

दादाश्री : हाँ, परंतु वे क्या कहते हैं? *नगुणो* नहीं, परंतु *नुगरो*। या फिर *नुगरो* कहते हैं। *नुगरो* मतलब बिना गुरु का! गुरु नहीं हों उन्हें अपने लोग *नुगरो* कहते हैं।

बारह वर्ष की उम्र में हमारी कंठी टूट गई थी, तो लोग *'नुगरो, नुगरो'* करते रहते थे! सभी कहते, 'कंठी तो पहननी पड़ती है। फिर से कंठी पहनाएँगे।' मैंने कहा, 'इन लोगों के पास से तो कंठी पहनी जाती होगी? जिनके पास प्रकाश नहीं है, जिनके पास दूसरों को प्रकाश देने की शक्ति नहीं है, उनके पास से कंठी किस तरह पहनी जाए?' तब कहे, 'लोग *नुगरो* कहेंगे।' अब *नुगरो* क्या चीज़ होती होगी? *नुगरो* मतलब कोई शब्द होगा गाली देने का, ऐसा समझा। वह तो बाद में बड़ा हुआ, तब समझ में आया कि नगुरु, न गुरु वाला!

प्रश्नकर्ता : यह किसी को गुरु मानने हो, तो उनकी जो विधियाँ होती हैं, कंठी बँधवाते हैं, कपड़े बदलवाते हैं, ऐसी कुछ ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : ऐसी कोई ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : धर्मगुरु ऐसा क्यों कहते हैं कि कंठी बँधवाई हो, उन्हें भगवान तारते हैं और *नुगरा* को कोई तारता नहीं है। यह बात सच है?

दादाश्री : यह तो ऐसा है, इन गड़रियों ने यह बात फैलाई है। गड़रिया भेड़ों से यह बात कहता है कि, '*नुगरा* होकर मत घूमना।' तब भेड़ें समझती हैं कि, 'ओहोहो! मैं *नुगरा* नहीं हूँ। चलो कंठी बँधाओ! गुरु करो!' तो ये गुरु किए। वे भेड़ें और ये गड़रिये! फिर भी यह शब्द हमें नहीं बोलने चाहिए। परंतु जहाँ ओपन समझना हो, तब सिर्फ समझने के लिए कहते हैं। वह भी वीतरागता से कहते हैं। इसीलिए हम शब्द बोलते हैं, फिर भी राग-द्वेष नहीं होते। हम ज्ञानी पुरुष हुए, हम जिम्मेदार कहलाते हैं। हमें किसी भी जगह पर थोड़ा भी राग-द्वेष नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : मुझे दो-तीन बार साधु-संन्यासी मिले थे, वे कहते थे कि, 'आप कंठी बँधवाइए।' मैंने मना कर दिया। मैंने कहा, 'मुझे नहीं बँधवानी है।'

दादाश्री : हाँ, परंतु जो पक्के हैं, वे नहीं बँधवाएँगे न! नहीं तो कच्चा हो तो बँधवा लेगा न!

प्रश्नकर्ता : गुरु के पास से कंठी नहीं बँधवाई हो, परंतु हमें किसी गुरु पर पूज्यभाव पैदा हुआ हो और उनका ज्ञान लें, तो कंठी बँधवाए बिना गुरु-शिष्य का संबंध स्थापित हुआ कहलाएगा या क्या? कितने ही शास्त्रों ने, आचार्यों ने कहा है कि *नुगरा* हो तो उसका मुँह भी नहीं देखना चाहिए।

दादाश्री : ऐसा है, कि बाड़े में घुसना हो तो कंठी बँधवाना और स्वतंत्र रहना हो तो कंठी नहीं बँधवाना। जहाँ पर ज्ञान देते हों, उनकी कंठी बाँधना। बाड़ा मतलब क्या कहते हैं कि पहले तू इस स्टेन्डर्ड में तैयार हो जा! यह थर्ड स्टेन्डर्ड में तैयार हो जा, तब तक और कहीं व्यर्थ प्रयत्न मत करना, ऐसा कहना चाहते हैं।

बाकी, *नुगरो* तो किस तरह कहें? *नुगरो* तो इस जमाने में कोई है ही नहीं। यह तो *नुगरो* किसने कहा है? ये कंठी वाले जो गुरु हैं न,

उन्होंने *नुगरो* खड़ा किया है। उनके ग्राहक कम नहीं हो जाएँ इसलिए। कंठी बाँधी हुई नहीं हो उसमें हर्ज नहीं है। यह कंठी तो, एक प्रकार का मन में साइकोलॉजिकल इफेक्ट डाल देती है। यानी ये सभी सांप्रदायिक मत वाले क्या करते हैं? लोगों को कंठियाँ ही पहनाते रहते हैं। फिर उसे असर हो जाता है कि, 'मैं इस संप्रदाय का हूँ, मैं इस संप्रदाय का हूँ!' यानी साइकोलॉजिकल इफेक्ट हो जाता है। परंतु वह अच्छा है। वह सब गलत नहीं है। वह हमें नुकसानदायक नहीं है। आपको '*नुगरा*' की चिंता नहीं करनी है, '*नुगरा*' कहें तो आपकी आबरू जाएगी, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : *नुगरा* की आपको चिंता क्यों हुई?

प्रश्नकर्ता : उस कंठी की बात आई न, इसलिए।

दादाश्री : हाँ, परंतु कंठी बाँधने वाले को ऐसा कहना चाहिए कि, 'यह बाँधी हुई कंठी मैं कब तक रखूँगा? मुझे फायदा होगा तब तक रखूँगा, नहीं तो फिर तोड़ दूँगा।' ऐसी उनके सामने शर्त रखनी चाहिए। वे पूछें कि, 'क्या फायदा चाहिए आपको?' तब हम कहें, 'मेरे घर में कलह नहीं होनी चाहिए, नहीं तो मैं कंठी तोड़ दूँगा।' इस तरह पहले से ही ऐसा कह देना चाहिए। ऐसा लोग कहते नहीं होंगे न? यह तो कलह भी चलती रहती है और कंठी भी चलती रहती है। कंठी बाँधकर क्लेश होता रहता हो तो वह कंठी हमें तोड़ देनी चाहिए। गुरु से कहें कि, 'लीजिए, आपकी कंठी यह वापस। आपकी कंठी में कोई गुण नहीं है। आपकी कंठी आपने मंत्र पढ़कर नहीं दी है। ऐसा मंत्र पढ़कर दीजिए कि मेरे घर में झगड़े नहीं हों।'

प्रश्नकर्ता : कंठी नहीं बाँधी हो तब तक वैसा उपदेश लें तो भी ज्ञान नहीं उतरेगा, ऐसा वे कहते हैं।

दादाश्री : ले! नहीं बाँधो तो आपको ज्ञान नहीं होगा(!) कितना अधिक धमकाते हैं! यह तो धमका-धमकाकर इन सब को सीधा कर देते हैं!

किसकी बात और किसने पकड़ी?

अच्छा है, उस रास्ते भी लोगों को सीधा करते हैं न! फिर भी ये लोग फिसलने नहीं देते उतना अच्छा है। बाकी, चढ़ाने की तो बात ही कहाँ रही? वे गुरु खुद ही नहीं चढ़े हैं न! चढ़ना कोई आसान बात है इस कलियुग में, दूषमकाल में? यह टीला तो बिल्कुल खड़ा टीला है! परंतु फिसलने नहीं देते। लोगों को दूसरा मिलता नहीं है, इसीलिए किसी भी दुकान में बैठ ही जाना पड़ता है न! इस तरह अनंत जन्मों से भटकते ही रहते हैं न!

प्रश्नकर्ता : एक ओर ऐसा कहा जाता है कि,

'गुरु गोविंद दोनों खड़े, किसको लागूँ पाय,
बलिहारी गुरु आपकी, जिसने गोविंद दियो बताय।'

दादाश्री : हाँ, पर वैसे गुरुदेव किन्हें कहा जाता है? गोविंद बताएँ, उन्हें गुरुदेव कहा जाता है। वैसा ही इसमें कहते हैं। अभी तो ये गुरु उनका गुरुपन स्थापित करने के लिए बात करते हैं। परंतु हमें उन्हें कहना चाहिए न कि 'साहब, मैं आपको गुरुदेव कब कहूँगा? कि आप मुझे गोविंद बता दें तो। यह लिखा है उस अनुसार यदि कर दें तो, गोविंद बता दीजिए, तो आपमें गुरुपन स्थापित करूँ। आप ही अभी तक गोविंद ढूँढ रहे हैं और मैं भी गोविंद ढूँढ रहा होऊँ तो हम दोनों का मेल कब पड़ेगा?'

बाकी, आज तो सभी गुरु यही सामने रखते हैं! गुरु ने गोविंद बताए नहीं हों न, तो भी ऐसा गवाते हैं। ताकि गुरुओं को 'प्रसाद' तो मिले न! इन शब्दों का दूसरे दुकानदार को लाभ होता है न। (!)

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसमें गुरु का पलड़ा अधिक वज़नदार बना दिया।

दादाश्री : है वज़नदार ही, परंतु वैसे गुरु अभी तक मिले नहीं। ये तो प्रोबेशनर (आजमायशी) गुरु चल निकले हैं इसमें! यानी प्रोबेशनर मान बैठे हैं कि 'अब हम गुरु हैं, और भगवान दिखा दिए, फिर मुझे

पूजना चाहिए तुझे।' परंतु प्रोबेशनर किस काम के? और जिसमें से *'हुँकार'* (मैं कुछ हूँ) चला गया हो न, उसके बाद वही भगवान! यदि कभी अधिक दर्शन करने योग्य पद हो तो वह सिर्फ यही एक कि जिनका *'हुँकार'* समाप्त हुआ हो, *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन) चला गया हो। जहाँ *पोतापणुं* गया, वहाँ पर सर्वस्व चला गया!

ये 'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु महेश्वरा' कहते हैं, वे तो गुरु ही नहीं हैं। ये तो 'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु...' के नाम से उनका खुद का लाभ उठाते फिरते हैं। इससे लोग फिर पूजते हैं उन्हें! परंतु वास्तव में तो, यह सद्गुरु की बात है। सद्गुरु अर्थात् ज्ञानी पुरुष के लिए यह बात है। जो सत् को जानते हैं, सत् के जानकार हैं, वैसे गुरु की बात है। उनके बदले इसे ये गुरु, रास्ते पर जाने वाले गुरु पकड़ बैठे हैं।

बाकी, जो गुरु बन बैठे हैं, उन्हें तो कह देना कि, 'भाईसाहब, मुझे आपको गुरु नहीं बनाना है। मैं व्यापारी गुरु बनाने नहीं आया हूँ। मैं तो जिन्हें गुरु नहीं बनना है, उन्हें गुरु बनाने आया हूँ।'

गुरु का बेटा गुरु?

प्रश्नकर्ता : पहले के ज़माने में जो गुरु परंपरा थी, कि गुरु शिष्य को सिखाते थे, फिर वापस शिष्य गुरु बनकर उनके शिष्यों को सिखाते थे..

दादाश्री : वह परंपरा सच्ची थी। परंतु अभी तो परंपरा रही नहीं न! अब तो गद्दीपति बन बैठे हैं। गुरु का बेटा गुरु बन जाए, वैसा कैसे माना जा सकता है! गद्दियों की स्थापना की, वह दुरुपयोग किया।

प्रश्नकर्ता : धर्म की व्यवस्था के बदले समाज व्यवस्था बन गई!

दादाश्री : हाँ, समाज व्यवस्था बन गई। धर्म तो कहाँ रहा, धर्म तो धर्म के स्थान पर रहा! फिर कलियुग घेर लेता है न! एक-दो पुरुष अच्छे होते हैं, परंतु फिर उनके पीछे गद्दीपति और वह सब शुरू हो जाता है, जहाँ-तहाँ गद्दीपति न! गद्दीपति शोभा नहीं देते कभी भी। धर्म में गद्दी नहीं होती। दूसरी सब जगह पर, सभी कलाओं में,

व्यापार में, गद्दी होती है, परंतु इस धर्म में गद्दी नहीं होती। इसमें तो जिनके पास आत्मा का हो, वैसे आत्मज्ञानी होने चाहिए!

प्रश्नकर्ता : पहले गद्दियाँ नहीं थी, तो ये गद्दियाँ निकलीं किस प्रकार से?

दादाश्री : वह तो इन अक्ल वालों के हाथ में गया न, तब इन अक्ल वालों ने खोज की। दूसरे कोई रहे नहीं इसलिए उन्होंने दुकानें डाल दीं। बाकी, अंधे को बेवकूफ आ मिलते हैं। इस देश में पता नहीं कहाँ से मिल जाते हैं, ऐसे के ऐसे तूफ़ान ही चलाए हैं लोगों ने। और आराम से... गद्दीपति बन बैठते हैं!

किसे अधिकार है गद्दीपति होने का? जिनमें क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हों उन्हें! आपको वह न्याय नहीं लगता? न्याय से क्या होना चााहिए?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : इसलिए कितने ही हमसे पूछते हैं कि यह आपने 'अक्रम' क्यों निकाला? मैंने कहा, 'यह मैंने नहीं निकाला है। मैं तो निमित्त बन गया हूँ। मैं किसलिए निकालूँ? मुझे क्या यहाँ पर गद्दियाँ स्थापित करनी है? हम क्या यहाँ गद्दियाँ स्थापित करने आए हैं? किसी का उत्थान करते हैं हमलोग? नहीं। यहाँ किसी का मंडन नहीं करते, किसी का खंडन नहीं करते। यहाँ तो वैसा कुछ है ही नहीं और यहाँ गद्दी भी नहीं है न! गद्दी वाले को झंझट है सारी। जहाँ गद्दियाँ हैं, वहाँ मोक्ष होता ही नहीं।

पूजने की कामना ही काम की

धर्म वालोंने तो उनके मतार्थ रखने के लिए, उनकी पूजे जाने की दुकानें चलाने के लिए, ये सब रास्ते निकाले हैं। इसलिए लोगों को बाहर निकलने ही नहीं दिया। उन्हें खुद को पुजवाने के लिए इन सब लोगों को उल्टे चक्कर में डाला। वे तोड़फोड़ वाले लोग दूसरा कुछ होने ही नहीं देते! तोड़फोड़ करने वाले यानी पूजे जाने की कामना वाले। पूजे जाने की कामना दलाली ही है न!

धर्म की पुस्तक हाथ में आई और किसी ने उन्हें बिठा दिया कि, 'अब पढ़ते रहिए।' तब से उसे भीतर कामना उत्पन्न हो जाती है कि अब लोग मुझे पूजेंगे। तब यदि आपको पूजे जाने की कामना उत्पन्न हुई, तो आपको डिसमिस कर देना चाहिए। क्योंकि ज्ञानी पुरुष की पुस्तक को छूने के बाद कामना उत्पन्न क्यों हुई? बल्कि कामना हो उसका भी नाश हो जाना चाहिए! ये तो कामनाएँ उत्पन्न होती हैं। आपको ऐसा समझ में आता है कि लोगों को भीतर पूजे जाने की कामनाएँ खड़ी हुई है, वैसा?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : फिर भीतर स्पर्धा चलती है। लोग किसी और को अधिक पूजते हों तो उसे अच्छा नहीं लगता फिर। मतलब कि पूजा जाना वही मोक्ष(!) हो ऐसा मान लिया है इन लोगों ने। यह तो बहुत बड़ा जोखिम है। बाकी, जिसका इस जगत् में किसी के साथ झगड़ा नहीं हो, उसे पूजना काम का है!

इन गुरुओं को तो पूजे जाने की कामनाएँ खड़ी होती है, गुरु होने की कामना रहती है। जबकि कृपालुदेव को कैसी कामना थी, वह तो पहचान, कि 'परम सत् जानने का कामी हूँ।' दूसरी किसी चीज़ की जिन्हें कामना नहीं थी! मुझे तो पूजे जाने की कामना पूरी ज़िंदगी में कभी भी खड़ी नहीं हुई। क्योंकि वह तो बोदरेशन कहलाता है। पूजने की कामना चाहिए, अपने से कोई बड़ा हो उसे! ('पुजाने' में से) एक मात्रा ही हटा देनी है न? (पूजने) बस!

प्रश्नकर्ता : मान, पूजा आदि गर्वरस वे सभी *पोतापणां* की महफिलें हैं न?

दादाश्री : वे सभी *पोतापणां* को मज़बूत करने वाली चीज़ें हैं! *पोतापणां* को मज़बूत किया हो वह फिर कभी प्रकाश में आता है न, किसी के साथ! तब लोग कहेंगे, 'देखो, असलियत सामने आई न!' उसका *पोतापणां* बाहर आता है, इसलिए उससे कभी भी अच्छा नहीं होता! यानी कि पूजे जाने की कामना छूटती नहीं है, अनादि काल से यह भीख छूटी नहीं है।

रहे नहीं नाम किसी के

फिर नाम की भी भीख होती है, इसलिए पुस्तकों में भी उनके नाम छपवाते हैं। इसके बदले तो शादी करनी थी न, तो बच्चे नाम आगे बढ़ाते। यहाँ किसलिए नाम रखने हैं, गुरु होने के बाद! पुस्तकों में भी नाम! 'मेरे दादा-गुरु और मेरे बाप-गुरु और फलाने गुरु!' ऐसा ही सब छपवाते रहते हैं। इन मंदिरों में भी नाम डालने लगे हैं वापस कि 'इन गुरु ने बनवाया।' अरे, नाम तो रहते होंगे कभी? संसारियों के नहीं रहते, तो साधुओं के नाम तो रहते होंगे? नाम रखने की तो इच्छा ही नहीं होनी चाहिए। कोई भी इच्छा रखना भीख है।

ध्येय चूका और घुसी भीख

यह भीख जाती नहीं। मान की भीख, कीर्ति की भीख, विषय की भीख, लक्ष्मी की भीख... भीख, भीख और भीख! बिना भीख वाले देखे हैं क्या? आखिर में मंदिर बनवाने की भी भीख होती है, इसलिए मंदिर बनाने में पड़ते हैं। क्योंकि कोई काम नहीं मिले, तब कीर्ति के लिए यह सब करते हैं। अरे, किसलिए मंदिर बनवाते हो? हिन्दुस्तान में कहाँ मंदिर नहीं हैं? परंतु ये तो मंदिर बनवाने के लिए पैसा इकट्ठा करते रहते हैं। भगवान ने कहा था कि मंदिर बनाने वाले तो, उनके कर्म के उदय होंगे तो बनवाएँगे। तू किसलिए इसमें पड़ता है?

हिन्दुस्तान का मनुष्यधर्म सिर्फ मंदिर बनवाने के लिए नहीं है। सिर्फ मोक्ष में जाने के लिए ही हिन्दुस्तान में जन्म है। एक अवतारी हुआ जाए, उस तरफ का ध्येय रखकर काम करना, तो पचास अवतार में भी, सौ अवतार में या पाँच सौ अवतार में भी हल आ जाएगा। दूसरा ध्येय छोड़ दो। फिर शादी करना, बच्चों का बाप बनना, डॉक्टर बनना, बंगले बनवाना, उसमें हर्ज नहीं है। परंतु ध्येय एक जगह पर ही रख, कि हिन्दुस्तान में जन्म हुआ है तो मुक्ति के लिए साधन कर लेना है। इस एक ध्येय पर आ जाओ तो हल आ जाएगा!

बाकी, किसी प्रकार की भीख नहीं होनी चाहिए। इस तरह धर्म के लिए दान लिखवाओ, फलाना लिखवाओ, वैसी अनुमोदना में हाथ

नहीं डालना चाहिए। करना, करवाना और अनुमोदन करना वहाँ पर नहीं होना चाहिए। हम तो सर्व भीखों से मुक्त हो चुके हैं। मंदिर बनवाने की भी भीख नहीं है। क्योंकि हमें इस जगत् की कोई भी चीज़ नहीं चाहिए। हम मान के भिखारी नहीं हैं, कीर्ति के भिखारी नहीं हैं, लक्ष्मी के भिखारी नहीं हैं, सोने के भिखारी नहीं हैं, शिष्यों के भिखारी नहीं हैं। विषयों के विचार नहीं आते, लक्ष्मी का विचार नहीं आता। विचार ही जहाँ उत्पन्न नहीं होते, वहाँ फिर भीख किस चीज़ की रहेगी? मान की, कीर्ति की, किसी भी प्रकार की भीख नहीं है।

और मनुष्य मात्र को कीर्ति की भीख होती है, मान की भीख होती है। हम पूछें, 'आपमें कितनी भीख है, वह आपको पता चलता है? आपमें किसी भी प्रकार की भीख है क्या?' तब कहेंगे, 'नहीं, भीख नहीं है।' अरे! अभी अपमान करे तो पता चल जाएगा कि मान की भीख है या नहीं!

हो सकता है कि स्त्री संबंध में ब्रह्मचारी हुआ हो, लक्ष्मी संबंधी भीख भी छोड़ दी हो, परंतु यह दूसरी सभी कीर्ति की भीख होती है, शिष्यों की भीख होती है, नाम कमाने की भीख होती है, सभी अंतहीन भीखें होती हैं। शिष्यों की भी भीख! कहेंगे, 'मेरे पास शिष्य नहीं हैं।' तब शास्त्रों ने क्या कहा है? जो आ मिले, खोजे बिना-अपने आप जो आ मिले, वह शिष्य!

भीख से भगवान दूर

इसलिए 'भीख' शब्द लिखता हूँ मैं। दूसरे लोग नहीं लिखते। 'तृष्णा' लिखते हैं। अरे, भीख लिख न! तो उसका भिखारीपन छूटे। तृष्णा का क्या अर्थ है? तृष्णा अर्थात् प्यास। अरे, प्यास तो लगे या नहीं लगे, उसमें क्या परेशानी है? अरे, यह तो तेरी भीख है। जहाँ भीख हो वहाँ पर भगवान कैसे मिलेंगे? यह भीख शब्द ऐसा है कि बिना फाँसी पर चढ़े फाँसी जैसा लगे!

संपूर्ण भीख जाने के बाद ही यह जगत् 'जैसा है वैसा' दिखता है। जब तक मुझमें भीख होगी, मुझे अन्य कोई भिखारी नहीं लगेंगे। परंतु खुद में से भीख गई, तब सभी भिखारी ही लगेंगे।

जिनकी सर्वस्व प्रकार की भीख मिटे, उसे ज्ञानी का पद मिलता है। ज्ञानी का पद कब मिलता है? तमाम प्रकार की भीख खत्म हो जाए, लक्ष्मी की भीख, विषयों की भीख, किसी भी प्रकार की भीख नहीं रहे, तब यह पद प्राप्त होता है।

भीख नहीं हो तो भगवान ही है, ज्ञानी है, जो कहो सो है। भीख के कारण ही यह ऐसा बन गया है। गिड़गिड़ाना इसीलिए पड़ता है न? भीख सिर्फ कहाँ पर रखनी है? ज्ञानी पुरुष के पास! ज्ञानी पुरुष के पास जाकर कहना कि, 'महाराज जी प्रेम का प्रसाद दीजिए।' वे तो देते ही रहते हैं, परंतु हम माँगें तब विशेष मिलती है। जैसे छानी हुई चाय और बिना छानी हुई चाय में फर्क होता है न, उतना फर्क पड़ जाता है। छानी हुई चाय में चाय की पत्तियाँ नहीं आतीं फिर।

प्योरिटी के बिना प्राप्ति नहीं

यानी कि यह तो भीख रही है इसलिए झंझट है। प्योरिटी नहीं रही। जहाँ-तहाँ व्यापार हो गया है। जहाँ पैसे का लेन-देन हुआ और जहाँ पर दूसरा कुछ घुसा, वह सब व्यापार हो गया। उसमें सांसारिक लाभ उठाने की तैयारी होती है। भौतिक लाभ, वे सब तो व्यापार कहलाते हैं। दूसरा कुछ नहीं लेता हो और मान की इच्छा हो, तब भी वह लाभ कहलाता है। तब तक सभी व्यापार ही कहलाते हैं।

हिन्दुस्तान ऐसा देश है, कि सब का व्यापार चलता है। लेकिन व्यापार में जोखिमदारी है। हमें क्या कहना चाहिए कि आप यह ऐसा करते हो, परंतु इसमें जोखिमदारी है।

प्रश्नकर्ता : धर्म के नाम पर इतना सारा पाखंड क्यों चलता है?

दादाश्री : तब किस नाम पर पाखंड करने जाएँ? दूसरे नाम से पाखंड करने जाएँगे तो लोग मारेंगे। महाराज जी दस रुपये ले गए, परंतु अब उन पर कोई आरोप लगाए और महाराज जी श्राप दे दें तो क्या होगा? इसलिए धर्म के नाम के अलावा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है, और किसी जगह पर भाग छूटने की जगह नहीं है।

उसमें ऐसा भी नहीं कह सकते कि सभी ऐसे ही हैं। इसमें पाँच-दस प्रतिशत बहुत अच्छा माल है! परंतु वहाँ पर फिर कोई जाता ही नहीं है, क्योंकि उनकी वाणी में वचनबल नहीं होता और इच्छा वाले गुरु की वाणी तो प्रभावित कर दे, वैसी होती है। इसलिए वहाँ पर सभी आते हैं। जबकि वहाँ उनकी भावना उल्टी होती है, जैसे-तैसे करके पैसे छीन लेना, वैसा होता है। इन प्रपंची दुकानों में से क्या लेना है? और ईमानदार दुकानें हों, तब वहाँ माल नहीं होता तो वहाँ से क्या लेना है? सच्चे मनुष्य के पास दुकान में माल नहीं है। प्रपंची दुकानों में यों तौल में माल ज़्यादा देते हैं, परंतु वह मिलावट वाला माल होता है।

परंतु जहाँ किसी भी प्रकार की ज़रूरत नहीं हो, पैसों की ज़रूरत नहीं हो, खुद के आश्रम का विस्तार करने की या खुद का नाम कमाने की ज़रूरत नहीं हो, वैसे मनुष्य हों तो बात अलग है। वैसे मनुष्य एक्सेप्टेड (स्वीकार्य) हैं। उस दुकान को यदि दुकान कहें तो भी वहाँ लोगों को लाभ होता है। फिर वहाँ पर ज्ञान नहीं हो तो भी उसमें हर्ज नहीं है, परंतु व्यक्ति निर्मल होने चाहिए, प्योर होने चाहिए। इम्प्योरिटी (मलिनता) से, कभी कोई कुछ प्राप्त नहीं कर सकता।

अप्रतिबद्धता से विचरें वे ज्ञानी

प्रश्नकर्ता : हिन्दू समाज में, जैन समाज में आश्रम पद्धति है, वह ठीक है या नहीं?

दादाश्री : वह पद्धति सत्युग में ठीक थी, यानी तीसरे और चौथे उन दो आरों में ठीक थी। पाँचवे आरे में आश्रम की पद्धति ठीक नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आश्रम पद्धति से भेद-अभेद और संप्रदाय उत्पन्न होते हैं या नहीं?

दादाश्री : आश्रम पद्धति संप्रदाय खड़े करने का साधन ही हैं! संप्रदाय बनाने वाले सभी अहंकारी हैं, ओवरवाईज़! नया खड़ा करते हैं, तृतियम (कुछ अलग ही)! मोक्ष में जाने की कोई भावना नहीं

है। खुद की अक्लमंदी दिखानी है। वे नये-नये भेद डालते रहते हैं और जब ज्ञानी प्रकट होते हैं तब सारे भेद बंद कर देते हैं, कम कर देते हैं। लाख ज्ञानियों का एक ही अभिप्राय होता है और एक अज्ञानी के लाख अभिप्राय होते हैं।

प्रश्नकर्ता : कहलाता आश्रम है, परंतु वहाँ परिश्रम होता है।

दादाश्री : नहीं, नहीं। हिन्दुस्तान में लोगों ने आश्रम का क्या उपयोग किया है, वह आपको बताऊँ? घर पर ऊब गया हो न, तो वह पंद्रह दिन वहाँ पर आराम से खाता-पीता और रहता है। वही सब धंधा किया है। इसलिए जिसे श्रम उतारना हो और खाना-पीना और सोए रहना हो, वह आश्रम रखे। पत्नी परेशान नहीं करती, कोई परेशान नहीं करता है। घर पर पत्नी-बच्चों के झगड़े होते हैं। वहाँ आश्रम में कोई झगड़ने वाला ही नहीं न, कहने वाला ही नहीं न! वहाँ तो एकांत मिलता है न, इसलिए सचमुच के खर्राटे बुलवाते हैं। खटमल नहीं, कुछ भी नहीं। ठंडी हवा, संसार से जो थकान हुई हो, वह वहाँ पर उतारते हैं।

अब ऐसे खा-पीकर पड़े रहते हों तो अच्छा था, परंतु ये तो दुरुपयोग करते हैं और उससे उनकी खुद की अधोगति करते हैं। उसमें औरों को नुकसान नहीं पहुँचाते, परंतु खुद का ही नुकसान करते हैं। उसमें एक-दो अच्छे लोग भी होंगे! बाकी, आश्रम तो पोल (इनसिन्सियारिटी) करने का साधन है!

प्रश्नकर्ता : आप जो मार्ग दिखाते हैं, उसमें आश्रम-मंदिर उन सब की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : यहाँ पर आश्रम-वाश्रम नहीं होता। यहाँ पर आश्रम तो होता होगा? मैं तो पहले से ही किसी भी आश्रम के विरुद्ध हूँ! मैं तो पहले से ही क्या कहता हूँ? मुझे तो भाई आश्रम की ज़रूरत नहीं है। लोग यहाँ पर आश्रम बनाने आए हैं न, उन लोगों को मना कर दिया। मुझे आश्रम की ज़रूरत किसलिए है? आश्रम नहीं होता अपने यहाँ।

इसलिए मैंने तो पहले से ही कहा है कि ज्ञानी पुरुष किसे कहते

हैं कि जो आश्रम का श्रम नहीं करते। मैं तो पेड़ के नीचे बैठकर सत्संग करूँ ऐसा आदमी हूँ। यहाँ जगह की सहूलियत नहीं हो तो किसी पेड़ के नीचे बैठकर भी आराम से सत्संग करेंगे। हमें कोई हर्ज नहीं है। हम तो उदयाधीन हैं। महावीर भगवान भी पेड़ के नीचे बैठकर ही सत्संग करते थे, वे कोई आश्रम नहीं ढूँढते थे। हमें कुटिया भी नहीं चाहिए और कुछ भी नहीं चाहिए। हमें कुछ भी ज़रूरत नहीं है न! किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। ज्ञानी आश्रम का श्रम नहीं करते।

प्रश्नकर्ता : अप्रतिबद्ध विहारी शब्द उपयोग हुआ है उनके लिए।

दादाश्री : हाँ, हम निरंतर अप्रतिबद्ध रूप से विचरते हैं, द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से निरंतर अप्रतिबद्ध रूप से विचरते हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष!

पूरा जगत् आश्रम बनाता है। मुक्ति पानी हो तो आश्रम का भार नहीं पुसाता। आश्रम के बजाय तो भीख माँगकर खाना अच्छा है। भीख माँगकर खाए उसके लिए भगवान ने छूट दी है। भगवान ने क्या कहा है कि भिक्षा माँगकर तू लोगों का कल्याण करना। तेरे पेट के लिए ही झंझट है न! आश्रम तो सत्युग में थे, तब खुद मोक्ष के लिए ही प्रयत्न करते थे, और इस कलियुग में तो श्रम उतारने का संग्रहस्थान है। अभी किसी को मोक्ष की कुछ नहीं पड़ी है। इसलिए इस काल में आश्रम बनाने जैसा नहीं है।

वह भगवान को नहीं पहुँचता

ये तो सिर्फ बिज़नेस में पड़े हुए हैं लोग। वे लोग धर्म के बिज़नेस में पड़े हुए हैं। उन्हें खुद की पूजा करवाकर फायदा कमाना है। हाँ, और ऐसी दुकानें तो हमारे हिन्दुस्तान में बहुत सारी हैं। ऐसी क्या दो-तीन दुकानें ही हैं? ऐसी तो अपार दुकानें हैं। अब उस दुकानदार से हम ऐसा कैसे कह सकते हैं? वह कहे कि 'मुझे दुकान शुरू करनी है' तो हम ना भी कैसे कहें? तो ग्राहकों का हमें क्या करना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : उन्हें रोकना चाहिए।

दादाश्री : नहीं, नहीं रोक सकते। ऐसा तो दुनिया में इस तरह चलता ही रहेगा।

प्रश्नकर्ता : अभी तो करोड़ों रुपये जमा करके आश्रम बनवाते हैं और लोग उनके पीछे पड़े हैं!

दादाश्री : परंतु ये रुपये ही ऐसे हैं न! रुपयों में बरकत नहीं है इसलिए।

प्रश्नकर्ता : परंतु उस लक्ष्मी का सही रास्ते पर उपयोग करे, पढ़ाई के काम में खर्च करे, या किसी उपयोगी सेवा में खर्च करे तो?

दादाश्री : वह खर्च होगी, तो भी मेरा कहना है कि उसमें भगवान को कुछ नहीं पहुँचता है। वह अच्छे रास्ते खर्च हो, तो उसमें ज़रा-सा भी खेत में गया तो बहुत अधिक उपजेगा। परंतु उसमें उसे क्या लाभ हुआ? बाकी, जहाँ लक्ष्मी है वहाँ धर्म नहीं होता। जहाँ पर जितनी लक्ष्मी है, उतना ही वहाँ पर धर्म कच्चा है!

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी आई इसलिए फिर उसके पीछे ध्यान देना पड़ता है, व्यवस्था करनी पड़ती है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। उसकी व्यवस्था के लिए नहीं, लोग कहेंगे कि व्यवस्था तो 'हम कर लेंगे।' परंतु जहाँ पर लक्ष्मी की हाज़िरी है, वहाँ पर धर्म उतना कच्चा रहता है! क्योंकि सब से बड़ी माया, लक्ष्मी और विषय-विकार! ये दोनों सब से बड़ी माया है। जहाँ ये माया है वहाँ भगवान नहीं होते, और भगवान हों, वहाँ माया नहीं होती है!

और पैसा घुसा तो फिर कितना घुसेगा उसका क्या ठिकाना? यहाँ कोई नियम है? इसलिए पैसा बिल्कुल जड़मूल से नहीं होना चाहिए। शुद्ध होकर आओ! मैला मत करना, धर्म में!

धर्म की क्या दशा है आज!

फिर फ़ीस रखते हैं सभी, जैसे नाटक हो वैसे! नाटक में फ़ीस रखते हैं, वैसी फिर फ़ीस रखते हैं। उनमें पाँच प्रतिशत अच्छे भी होते हैं। बाकी तो सोने का भाव बढ़ गया, वैसे 'इनके' भी भाव बढ़ जाते

हैं न! इसलिए मुझे पुस्तक में लिखना पड़ा कि जहाँ पैसों का लेन-देन है, वहाँ भगवान नहीं हैं और धर्म भी नहीं है। जहाँ पैसों का लेन-देन नहीं है, व्यापारी पहलू ही नहीं है, वहाँ भगवान हैं! पैसा, लेन-देन वह व्यापारी पहलू कहलाता है।

सभी तरफ पैसे, जहाँ जाओ वहाँ पैसे, जहाँ जाओ वहाँ पैसे! सब तरफ फ़ीस, फ़ीस और फ़ीस है! हाँ, तब गरीबों ने क्या गुनाह किया बेचारों ने? फ़ीस रखो तो गरीबों के लिए ऐसा कहो कि, 'भाई, गरीब के पास से चार आने लूँगा, बहुत हो गया।' तब तो गरीब भी जा सकेगा वहाँ पर। यह तो धनवान ही लाभ लेते हैं। बाकी, जहाँ फ़ीस हो, वहाँ कुछ भी धर्म ही नहीं है। हमारे यहाँ एक पैसा भी नहीं लिया जाता। यहाँ फ़ीस रखी हो तो क्या दशा हो? एक बार 'ज्ञान' लेने के लिए तो आप खर्च दो, परंतु फिर कहोगे, 'ज्ञान को मज़बूती से पालेंगे, परंतु अब वापस फ़ीस नहीं देंगे।'

यह तो हमलोग किसी का नाम दें, वह तो गलत कहलाएगा। यह तो आपको रूपरेखा दे रहा हूँ कि धर्म की क्या दशा हो गई है अभी। गुरु जो व्यापारी जैसे बन बैठे हैं, वह सब गलत है। जहाँ प्रेक्टिशनर होते हैं, फ़ीस रखते हैं, कि 'आज आठ-दस रुपये फ़ीस है, कल बीस रुपये फ़ीस है' तो वह सब बेकार है।

जहाँ पैसों का व्यापार है, वहाँ वे गुरु नहीं कहलाते। जहाँ टिकट है, वह तो सब रामलीला कहलाता है। परंतु लोगों को अभी भान नहीं रहा, इसलिए बेचारे टिकट वाले के वहीं पर जाते हैं। क्योंकि वहाँ पर झूठ है और यह खुद भी झूठा है, इसलिए दोनों एडजस्ट हो जाते हैं! अर्थात् बिल्कुल झूठ और बिल्कुल घोटाला चल रहा है।

ये तो फिर कहेंगे, 'मैं निस्पृह हूँ, मैं निस्पृह हूँ।' अरे, यह गाता क्यों रहता है? तू निस्पृही है, तो तुझ पर कोई शंका रखने वाला नहीं है, और तू स्पृहा वाला है, तो तू चाहे जितना कहे, फिर भी तुझ पर शंका किए बिना छोड़ेंगे नहीं। क्योंकि तेरी स्पृहा ही कह देगी, तेरी दानत ही कह देगी।

इसमें कमी कहाँ?

ये तो सभी भीख के लिए निकल पड़े हैं। अपना पेट भरने निकले हैं, सब अपना-अपना पेट भरने के लिए निकले हैं। या फिर पेट नहीं भरना हो तो कीर्ति चाहिए। कीर्ति की भीख, लक्ष्मी की भीख, मान की भीख! यदि बिना भीख का मनुष्य हो तो उसके पास से जो माँगो, वह प्राप्त होगा। भीख वाले के पास हम जाएँ तो वह खुद ही सुधरा हुआ नहीं हो और हमें भी नहीं सुधार सकता। क्योंकि दुकानें शुरू की हैं लोगों ने। ये ग्राहक मिल जाते हैं आराम से!

एक व्यक्ति मुझसे पूछता है कि, 'उसमें दुकानदारों का दोष है या ग्राहकों का दोष?' मैंने कहा, 'ग्राहकों का दोष! दुकानदार तो चाहे कैसी भी दुकान लगाकर बैठें, परंतु हमें नहीं समझना चाहिए? इतना-सा आटा काँटे में लगाकर मछुआरा तालाब में डालता है, उसमें मछुआरे का दोष है या खाने वाले का दोष? जिसे यह लालच है उसका दोष है या मछुआरे का? जो पकड़ा जाए उसका दोष! ये अपने लोग फँसे हुए ही हैं न, इन सब गुरुओं से।

लोगों को पूजा जाना है इसलिए संप्रदाय बना दिए हैं। इसमें इन ग्राहकों का सारा दोष नहीं है बेचारों का। इन दलालों का दोष है। इन दलालों का पेट भरता ही नहीं और जगत् का भरने नहीं देते। इसलिए मैं यह बताना चाहता हूँ। यह तो दलाली में ही एशो-आराम और मौज मनाते रहते हैं और अपनी-अपनी सेफसाइड ही ढूँढी है। परंतु उन्हें कहना मत कि आपका दोष है। कहने से क्या फायदा भाई? सामने वाले को दुःख होता है। हमलोग दुःख देने के लिए नहीं आए हैं। हमें तो समझने की ज़रूरत है कि कमियाँ कहाँ पर है! अब, दलाल क्यों खड़े रहे हैं? क्योंकि ग्राहकी बहुत है इसलिए। ग्राहकी यदि नहीं हो तो दलाल कहाँ जाएँगे? चले जाएँगे। परंतु ग्राहकी का दोष है न, मूल तो? इसलिए मूल दोष तो अपना ही है न! दलाल कब तक खड़े रहते हैं? ग्राहकी हो तब तक। अभी इन मकानों के दलाल कब तक भाग-दौड़ करेंगे? मकानों के ग्राहक होंगे तब तक। नहीं तो बंद, चुप!

लालच ही भरमाए

प्रश्नकर्ता : अभी तो गुरु पैसों के पीछे ही पड़े होते हैं।

दादाश्री : वह तो ये लोग भी ऐसे हैं न? लकड़ियाँ टेढ़ी है, इसलिए यह आरी भी टेढ़ी आती है। यह लकड़ियाँ ही सीधी नहीं है न! लोग टेढ़े चलते हैं इसलिए गुरु टेढ़े मिलते हैं। लोगों में क्या टेढ़ापन है? 'मेरे बेटे के घर पर बेटा चाहिए।' यानी लोग लालची हैं इसलिए ये लोग चढ़ बैठे हैं। अरे, वह क्या बेटे के वहाँ बेटा देने वाला था? वह कहाँ से लाने वाला था? वह खुद बिना पत्नी और बच्चों वाला है, वह कहाँ से लाने वाला था? किसी बेटे वाले से कह न! यह तो 'मेरे बेटे के घर बेटा हो जाए' इसलिए उसे गुरु बनाते हैं। यानी लोग लालची हैं, तब तक ये धूर्त चढ़ बैठे हैं। लालची हैं, इसलिए गुरु के पीछे पड़ते हैं। हमें लालच नहीं हो और तब गुरु बनाएँ तो सच्चा!

यह तो कपड़े बदलकर लोगों को भरमाते हैं और लोग लालची हैं इसीलिए भ्रमित हो जाते हैं। लालची नहीं हो, तो कोई भी भ्रमित न हो! जिसे किसी भी प्रकार का लालच नहीं है, उसे भ्रमित होने की बारी नहीं आती।

प्रश्नकर्ता : परंतु आज तो गुरु के पास से भौतिक सुख माँगते हैं, मुक्ति कोई नहीं माँगता है।

दादाश्री : सब ओर भौतिक की ही बातें हैं न! मुक्ति की बात ही नहीं है। यह तो 'मेरे बेटे के घर बेटा हो जाए, या फिर मेरा व्यापार अच्छी तरह चले, मेरे बेटे को नौकरी मिल जाए, मुझे ऐसे आशीर्वाद दें, मेरा कल्याण करें' ऐसी अपार लालच हैं सभी। अरे, धर्म के लिए, मुक्ति के लिए आया है या यह सब चाहिए?

अपने में कहावत है न, 'गुरु लोभी, शिष्य लालची, दोनों खेलें दाँव।' ऐसा नहीं होना चाहिए। शिष्य लालची है, इसलिए गुरु उनसे कहेगा कि, 'तुम्हारा यह हो जाएगा, हमारी कृपा से ऐसा हो जाएगा, यह हो जाएगा।' वह लालच घुसा, वहाँ बरकत नहीं आती।

गुरु में स्वार्थ नहीं होना चाहिए

कलियुग के कारण गुरु में कोई सत्व नहीं होता है। क्योंकि वह आपसे अधिक स्वार्थी होते हैं। उसमें वे खुद का काम करवाने फिरते हैं, आप अपना काम करवाने फिरते हो। ऐसा रास्ता गुरु-शिष्य का नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : बुद्धिशाली लोग बहुत बार ऐसे गलत गुरु को वर्षों तक ऐसा ही मानते हैं कि ये ही सच्चे गुरु हैं।

दादाश्री : वे तो लालच होता है सारा। काफी कुछ लोग तो लालच से ही गुरु बनाते हैं।

अभी के ये गुरु, ये कलियुग के गुरु कहलाते हैं। किसी न किसी स्वार्थ में ही होते हैं कि 'किस काम में आएँगे?' ऐसा पहले से ही सोचते हैं! अपने मिलने से पहले ही सोचते हैं कि ये क्या काम आएँगे? कभी ये डॉक्टर वहाँ पर जाए न, और उसे देखें, तब से विचार आते हैं कि किसी दिन काम आएँगे। इसलिए 'आइए, आइए डॉक्टर' कहेंगे। अरे, तेरे किस काम के? 'कभी बीमार हो जाऊँ, तब काम में आएँगे न!' वे सभी ताक वाले कहलाते हैं। ताक वाले के पास हमारा काम कभी भी नहीं होगा। जो ताक में नहीं हैं, जिन्हें कुछ चाहिए नहीं, वहाँ जाना। ये ताक में रहने वाले तो वे भी स्वार्थी और हम भी स्वार्थी! गुरु-शिष्य में स्वार्थ हो तो वह गुरुपन भी नहीं है और वह शिष्यपन भी नहीं है। स्वार्थ नहीं होना चाहिए।

हम यदि सच्चे हैं तो उन गुरु से कह दें कि, 'साहब, जिस दिन थोड़ा भी स्वार्थ आपमें दिखेगा तो मैं तो चला जाऊँगा। दो गालियाँ देकर भी चला जाऊँगा। इसलिए आपको मुझे साथ में रखना हो तो रखो। हाँ, खाने-पीने का चाहिए तो आपको उसकी अड़चन नहीं पड़ने दूँगा। लेकिन आपको स्वार्थ नहीं रखना है।'

हाँ, स्वार्थ नहीं दिखे वैसे गुरु चाहिए। लेकिन अभी तो लोभी गुरु और लालची शिष्य, दोनों इकट्ठे हो जाएँ, तो क्या दिन बदलेंगे? फिर 'दोनों खेलें दाव' ऐसा चलता रहता है!

मूलतः लोग लालची हैं, इसलिए इन धूर्तों का चलता रहता है। सच्चा गुरु धूर्त नहीं होता। वैसे सच्चे गुरु हैं अभी तक। वैसे कोई नहीं है? यह दुनिया कुछ खाली नहीं हो गई है। परंतु वैसे मिलने भी मुश्किल हैं न! पुण्यशाली को मिलेंगे न!

पदार्पण के भी पैसे

फिर, कितने ही पदार्पण करवाकर पैसे ऐंठ लेते हैं। ये गुरु घर में चरण रखने के भी रुपये लेते हैं! तब इन गरीबों के घर में चरण रखो न! ऐसा किसलिए करते हो? गरीबों के सामने नहीं देखना है? तब एक पधरावनी कराने वाले को मैंने कहा, 'अरे, रुपये गँवाता है और समय बेकार बिगाड़ रहा है। उनके पैर रखवाने के बदले तो किसी गरीब का पैर रखवा कि जिनमें दरिद्र नारायण पधारे हुए हों। इन सब गुरुओं के चरणों का क्या करना है?' परंतु पब्लिक ऐसी लालची है कि कहेगी, 'चरण रखें तो अपना काम हो जाए। बेटे के घर बेटा हो जाए, आज पंद्रह वर्ष से नहीं है तो।'

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा है लोगों की इसलिए।

दादाश्री : नहीं, लालची हैं इसलिए। श्रद्धा नहीं है, इसे श्रद्धा नहीं कहते। लालची मनुष्य तो चाहे जो मनौती मानेगा। पागल के लिए भी मनौती रखते हैं। कोई कहे कि 'यह पागल है, जो लोगों को बच्चे देता है।' तो ये लोग 'महाराज जी, महाराज जी' करके उसके भी पैरों पड़ेंगे। उसके बाद बच्चा हो जाएँ तो कहेंगे, 'इनके कारण ही हुआ न?' लालची लोगों से तो क्या कहें?

यह तो मुझे भी लोग कहते हैं कि, 'दादा ने ही यह सब दिया है।' तब मैं कहता हूँ कि, 'दादा तो कुछ देते होंगे?' परंतु सब दादा के सिर पर आरोपित करते हैं! आपका पुण्य और मेरा यशनाम कर्म होता है, इसलिए हाथ लगाऊँ और आपका काम हो जाता है। तब ये सब कहते हैं, 'दादाजी, आप ही करते हैं यह सब।' मैं कहता हूँ कि, 'नहीं, मैं नहीं करता। आपका ही आपको मिला है। मैं किसलिए करूँ?

मैं कहाँ यह झंझट मोल लूँ? मैं कहाँ इन झगड़ों में पड़ूँ?' क्योंकि मुझे कुछ नहीं चाहिए। जिसे कुछ भी नहीं चाहिए, जिसे कोई लालसा नहीं है, किसी चीज़ के भिखारी नहीं हैं, तो वहाँ आपका काम निकाल लो।

मैं तो क्या कहता हूँ कि हमारे चरण रखवाओ, पर लक्ष्मी की लालसापूर्वक मत करो। ठीक है, वैसा कोई निमित्त हो तो हमारे चरण रखवाओ।

प्रश्नकर्ता : घर के उद्धार के बदले खुद का उद्धार हो, वैसा तो कर सकता है या नहीं?

दादाश्री : हाँ, सबकुछ कर सकता है। सबकुछ ही हो सकता है। लेकिन लक्ष्मी की लालसा नहीं होनी चाहिए। यह दानत खोरी नहीं होनी चाहिए और यह आप मुझे फोर्स करके उठाकर ले जाओ, उसका अर्थ पधरावनी किया कहलाएगा? पधरावनी मतलब तो मेरी राज़ीखुशी से होना चाहिए। फिर भले आप मुझे शब्दों से राज़ी करो या कपटजाल से राज़ी करो। लेकिन मैं कपटजाल से भी राज़ी हो जाऊँ, वैसा नहीं हूँ।

हमें भी छलने वाले आते हैं, ऐसे मीठी-मीठी बातें करने वाले आते हैं, परंतु मैं धोखा नहीं खाता! हमारे पास लाखों लोग आते होंगे। वे मीठी-मीठी बातें करते हैं, सब करते हैं, लेकिन राम तेरी माया...! उसे यहाँ मीठा मिलता ही नहीं न! वे जानते हैं कि दादा के पास ऐसा कुछ भी नहीं चलेगा इसलिए वापस जाता है। ऐसे 'गुरु' देख लिए हैं, सभी छलने वाले 'गुरु' देख लिए हैं। वैसे गुरु आएँ तो मैं पहचान लेता हूँ कि ये आए हैं। छलने वाले को 'गुरु' ही कहा जाएगा न! नहीं तो दूसरा कौन है वह? 'छलिया' (ठगने वाला) शब्द कहा ही नहीं जा सकता, 'गुरु' ही कहा जाएगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ऐसे बहुत सारे मिले हैं। उनको मुँह पर कुछ नहीं कहता हूँ। वे अपने आप ही तंग आ जाते हैं कि, 'यहाँ मैं कहने आया

हूँ, परंतु कुछ सुनते ही नहीं। इतना सब उन्हें देने आया हूँ।' लेकिन फिर वह ऊब जाता है कि 'इन दादा के पास कुछ दाल गलने वाली नहीं है, यह खिड़की भविष्य में खुलेगी नहीं।' अरे, मुझे कुछ नहीं चाहिए, तू किसलिए खिड़की खोलने आया है? जिसे चाहिए वहाँ जा न, लालची हो वहाँ जा। यहाँ तो कोई लालच ही नहीं है न! चाहे जैसे आएँ फिर भी वापस निकाल देता हूँ कि 'भाई, यहाँ पर नहीं!'

लोग तो कहने आएँगे कि, 'आइए चाचा, आपके बगैर तो मुझे अच्छा नहीं लगता। चाचा, आप कहो उतना काम कर आऊँगा आपका, कहो उतना सभी। आपके पैर दबाऊँगा।' अरे यह तो मीठी-मीठी बातें करता है, वहाँ बहरे हो जाना।

अर्थात् सब सरल हो गया है, तो अब अपना काम पूरा कर लो। इतना ही मैं कहना चाहता हूँ। बहुत सरल नहीं आएगा, इतना अधिक सरल नहीं आएगा, ऐसा चान्स बार-बार नहीं आएगा। यह चान्स उच्च है न, इसलिए यह दूसरी मीठी-मीठी बातें कम होने दो न! इन मीठी बातों में मज़ा नहीं है। मीठी-मीठी बातें करने वाले लोग तो मिलेंगे, परंतु उसमें आपका हित नहीं है। इसलिए मीठी बातों के शौक जाने दो अब, इस एक जन्म के लिए! अब तो आधा ही जीवन रहा है न! अब पूरा जीवन कहाँ रहा है?

प्योरिटी ही चाहिए

प्रश्नकर्ता : आप ऐसा बोले, दूसरा कोई ऐसा कहता ही नहीं है।

दादाश्री : हाँ, परंतु प्योर हो गया हो तब बोले न! नहीं तो वह किस तरह बोलेगा? उन्हें तो इस दुनिया का लालच चाहिए और इस दुनिया के सुख चाहिए। वे क्या बोलेंगे फिर? इसलिए प्योरिटी होनी चाहिए। पूरे वर्ल्ड की चीज़ें हमें दो, तो हमें उनकी ज़रूरत नहीं है, पूरे वर्ल्ड का सोना हमें दे, तो भी हमें उसकी ज़रूरत नहीं है। पूरे वर्ल्ड के रुपये दे, तो हमें ज़रूरत नहीं है, स्त्री विचार ही नहीं आता। इसलिए इस जगत् में किसी भी प्रकार की हमें भीख नहीं है। शुद्ध आत्मदशा साधना, वह कोई आसान बात है?

प्रश्नकर्ता : मतलब कि किसी भी गुरु का व्यक्तिगत चारित्र शुद्ध होना चाहिए!

दादाश्री : हाँ, गुरु का चारित्र संपूर्ण शुद्ध होना चाहिए। शिष्य का चारित्र न भी हो, लेकिन गुरु का चारित्र तो एक्ज़ेक्ट होना चाहिए। गुरु यदि बिना चारित्र के हैं तो वे गुरु ही नहीं, उसका अर्थ ही नहीं। संपूर्ण चारित्र चाहिए। यह अगरबत्ती चारित्र वाली होती है, इतने से कमरे में यदि पाँच-दस अगरबत्तियाँ जलाई हों तो पूरा कमरा सुगंधित हो जाता है। तब फिर गुरु तो बिना चारित्र वाले चलेंगे? गुरु तो सुगंध वाले होने चाहिए।

मुख्य ज़रूरत, मोक्षमार्ग में

मोक्षमार्ग में दो चीज़ें नहीं होती। स्त्री के विचार और लक्ष्मी के विचार! जहाँ स्त्री का विचार मात्र हो, वहाँ धर्म नहीं होता, लक्ष्मी का विचार मात्र हो वहाँ धर्म नहीं होता। इन दो मायाओं के कारण तो यह संसार खड़ा रहा है। हाँ, इसलिए वहाँ धर्म ढूँढना भूल है। जबकि अभी लक्ष्मी के बिना कितने केन्द्र चलते हैं?

प्रश्नकर्ता : एक भी नहीं।

दादाश्री : वह माया छूटती नहीं न! गुरु में भी माया प्रवेश कर गई होती है। कलियुग है न! इसलिए प्रवेश कर जाती है न, काफी कुछ? इसलिए जहाँ पर स्त्री संबंधी विचार हैं, जहाँ पैसे संबंधी लेन-देन है, वहाँ सच्चा धर्म नहीं हो सकता। संसारियों के लिए नहीं, परंतु जो उपदेशक होते हैं, जिनके उपदेश के आधार पर चलते हैं, वहाँ यह नहीं होना चाहिए। नहीं तो इन संसारियों के वहाँ भी यही है और आपके वहाँ भी यही है? ऐसा नहीं होना चाहिए। और तीसरा क्या? सम्यक् दृष्टि होनी चाहिए।

इसलिए लक्ष्मी और स्त्री संबंध हों, वहाँ पर खड़े मत रहना। गुरु देखकर बनाना। लीकेज वाला हो तो मत बनाना। बिल्कुल भी लीकेज नहीं चाहिए। गाड़ी में घूमता हो तो हर्ज नहीं, परंतु चारित्र में फेल हो

तो हर्ज है। बाकी यह अहंकार हो उसका हर्ज नहीं है, कि 'महाराज जी, महाराज जी' करें तो खुश हो जाता है, उसमें हर्ज नहीं है। चारित्र से फेल नहीं हो तो लेट गो करना चाहिए। सब से मुख्य वस्तु चारित्र है!

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी और स्त्री वह सच्ची धार्मिकता के विरुद्ध है! परंतु स्त्रियाँ तो अधिक धार्मिक होती हैं, ऐसा कहा जाता है।

दादाश्री : स्त्रियों में धार्मिकता होती है, उसमें शंका नहीं है, धर्म में स्त्रियाँ हों तो हर्ज नहीं है, परंतु कुदृष्टि का हर्ज है, कुविचार का हर्ज है। स्त्री को भोग का स्थान मानते हो, उसमें हर्ज है, वह आत्मा है, वह भोग का स्थान नहीं है।

बाकी, जहाँ लक्ष्मी ली जाती है, फ़ीस के रूप में लक्ष्मी ली जाती है, कर के रूप में लक्ष्मी ली जाती है, भेंट के रूप में ली जाती है, वहाँ धर्म नहीं होता। पैसे हों, वहाँ धर्म नहीं होता और धर्म हो वहाँ पैसा नहीं होता। यानी कि समझ में आए वैसी बात है न? जहाँ विषय और पैसे हों, वहाँ वह गुरु भी नहीं है। गुरु भी अब अच्छे तैयार होंगे। अब सब कुछ बदलेगा। अच्छा यानी पवित्र। हाँ, गुरु को पैसों की अड़चन हो, तो हम पूछें कि आपको खुद के निर्वाह के लिए क्या ज़रूरत है? बाकी दूसरा कुछ उन्हें नहीं होना चाहिए। या फिर 'बड़ा होना है, फलाँ होना है', ऐसा नहीं होना चाहिए।

उसी का नाम जुदाई

ये क्या सुखी लोग हैं? मूलतः दुःखी हैं लोग और उनके पास से रुपये लेते हो? दुःख निकालने के लिए वे गुरु के पास जाते हैं न? तब आप उसके पच्चीस रुपये लेकर उसका दुःख बढ़ा देते हो! एक पैसा भी नहीं लेना चाहिए किसी के पास से। एक रुपया भी नहीं लेना चाहिए। दूसरों के पास से कुछ भी लेना, वह जुदाई कहलाती है। उसी का नाम संसार है! उसमें वही भटका हुआ है, जो लेने वाला मनुष्य है वह भटका हुआ कहलाता है। सामने वाले को पराया समझता है, इसलिए वह पैसे लेता है।

इस दुनिया की कोई भी चीज़, एक रुपया भी यदि मैं खर्च करूँ

तो मैं उतना दिवालिया होता जाऊँगा। भक्तों का एक भी पैसा खर्च नहीं कर सकते। यह व्यापार जिसने शुरू किया है वह खुद दिवालिया की स्थिति में चला जाएगा, यानी जो कुछ भी उन्हें सिद्धि प्राप्त है, वह खोकर चले जाएँगे। जो थोड़ी-बहुत सिद्धि प्राप्त हुई, उसके आधार पर सब लोग उनके पास आते थे। परंतु फिर सिद्धि खत्म हो जाएगी! किसी भी सिद्धि का दुरुपयोग करो तो सिद्धि खत्म हो जाती है।

सर्व दुःखों से मुक्ति माँगनी, या...

कितने ही लोग यहाँ आकर पैसे रखते हैं। अरे, यहाँ पैसे नहीं रखने होते, यहाँ माँगना होता है। यहाँ तो रखने का होता होगा? जहाँ ब्रह्मांड का मालिक बैठा हुआ है, वहाँ तो कुछ रखा जाता होगा? आपको तो सिर्फ माँगना होता है कि 'मुझे ऐसी अड़चन है, वह निकाल दीजिए।' वर्ना, पैसे तो किसी गुरु के सामने रखना। उन्हें कुछ कपड़े चाहिए होंगे, दूसरा कुछ चाहिए होगा। ज्ञानी पुरुष को तो कुछ भी नहीं चाहिए।

एक मिल के सेठ ने, सांताक्रुज़ में हम जहाँ रहते थे वहाँ, इतनी बड़ी-बड़ी तीन पेटियाँ मज़दूर के साथ ऊपर भिजवाईं। फिर सेठ ऊपर मिलने आया। मैंने कहा, 'क्या है यह सब सेठ?' तब सेठ कहते हैं, 'कुछ नहीं, फूल नहीं पर फूल की पँखुड़ी...' मैंने कहा, 'किसलिए यह पंखुड़ी लाए हो?' तब उन्होंने कहा, 'कुछ नहीं, कुछ नहीं साहब।' मैंने कहा, 'आपको कुछ दुःख या अड़चन है?' तब वे बोले, 'सेर मिट्टी चाहिए।' 'अरे, सेर मिट्टी कौन-से जन्म में नहीं थी? कुत्ते में गया वहाँ भी बच्चे थे, गधे में गया वहाँ भी बच्चे थे, बंदर में गया वहाँ भी बच्चे, जहाँ गया वहाँ बच्चे। अरे, कौन-से जन्म में नहीं थी यह मिट्टी? अभी भी सेर मिट्टी चाहिए? भगवान आप पर राज़ी हुए हैं, तब फिर आप मिट्टी ढूँढ रहे हो? फिर मुझे रिश्वत देने आए हो? यह आपकी गंदगी मुझे चुपड़ने आए हो? मैं व्यापारी आदमी! फिर मेरे पास गंदगी आए तो मैं किसे चुपड़ने जाऊँ? ये बाहर सभी गुरुओं को चुपड़ आओ। उन बेचारों के पास गंदगी नहीं

आती। यह झगड़ा यहाँ कहाँ लाए?' तब उन्होंने कहा, 'साहब, कृपा कीजिए।' तब मैंने कहा, 'हाँ, कृपा करेंगे, सिफारिश कर दूँगा।'

आपको जो दुःख है, तब हमें तो 'इस तरफ का' 'फोन' पकड़ा और 'इस तरफ'(देवी-देवताओं को) 'फोन' किया! हमें बीच में कुछ भी नहीं है। मात्र एक्सचेन्ज करना है। नहीं तो हमें ज्ञानी पुरुष को यह सब होता ही नहीं न! ज्ञानी पुरुष इसमें कुछ हाथ नहीं डालते। लेकिन इन सबके दुःख सुनने पड़े हैं न! ये सारे दुःख मिटाने पड़े होंगे न? अड़चन हो तो रुपये माँगने आना। अब, मैं तो रुपये देता नहीं, मैं फोन कर दूँगा, आगे! परंतु लोभ मत करना। तुझे परेशानी हो, तभी आना। तेरी परेशानी दूर करने जितना सभी कर दूँगा। परंतु लोभ करने जाएगा, उस घड़ी मैं बंद कर दूँगा।

आपके दुःख मुझे सौंप दो और यदि आपको विश्वास हो तो वे आपके पास नहीं आएँगे। मुझे सौंपने के बाद आपका विश्वास टूटेगा तो आपके पास वापस आएँगे। इसलिए आपको कुछ दुःख हों, तो मुझे कहना कि, 'दादा, मुझे इतने दुःख हैं, वे मैं आपको सौंप देता हूँ।' वे मैं ले लूँ तो निबेड़ा आए, नहीं तो निबेड़ा कैसे आएगा?

मैं इस दुनिया के दुःख लेने आया हूँ। आपके सुख आपके पास ही रहने दो। उसमें आपको हर्ज है क्या? आपके जैसे यहाँ पर पैसे दें, तो मुझे पैसों का क्या करना है? मैं तो दुःख लेने आया हूँ। आपके पैसे आपके पास ही रहने दो, वे आपके काम आएँगे और जहाँ ज्ञानी हों, वहाँ पैसों का लेन-देन नहीं होता। ज्ञानी तो बल्कि आपके सभी दुःख निकालने के लिए आए होते हैं, दुःख खड़े करने के लिए नहीं आए होते हैं।

प्योरिटी 'ज्ञानी' की

यदि मैं लोगों से पैसे लूँ, तो मुझे तो लोग चाहिए उतना पैसा देंगे। लेकिन मुझे पैसों का क्या करना है? क्योंकि वह सारी भीख जाने के बाद तो मुझे यह ज्ञानी का पद मिला है!

मुझे अमरीका में गुरुपूर्णिमा के दिन सोने की चैन पहना जाते

थे। दो-दो, तीन-तीन तोले की! लेकिन मैं वापस दे देता था सभीको। क्योंकि मुझे क्या करना है? तब एक बहन रोने लगी कि 'मेरी माला तो लेनी ही पड़ेगी।' तब मैंने उसे कहा, 'मैं तुझे एक माला पहनाऊँ तो तू पहनेंगी?' तो उस बहन ने कहा, 'मुझे कोई हर्ज नहीं। लेकिन आपका मुझसे नहीं लिया जा सकता।' तब मैंने कहा, 'मैं तुझे दूसरे के पास से पहनाऊँगा।' एक मन सोने की माला बनवाएँ, और फिर रात को पहनकर सो जाना पड़ेगा, ऐसी शर्त रखें तो पहनकर सो जाओगी क्या? दूसरे दिन कहोगी, 'लीजिए दादा, यह आपका सोना।' सोने में सुख होता तो सोना अधिक मिले तो आनंद हो। परंतु इसमें सुख है न, वह मान्यता है तेरी, रोंग बिलीफ़ है। इसमें सुख होता होगा? सुख तो जहाँ कोई भी चीज़ नहीं लेनी हो, वहाँ सुख है। इस वर्ल्ड में कोई चीज़ ग्रहण करनी बाकी न रहे, वहाँ सुख है।

मैं तो मेरे घर का, अपने खुद के व्यापार की कमाई का-मेरे प्रारब्ध का खाता हूँ और कपड़े पहनता हूँ। मैं कुछ किसी के पैसे लेता भी नहीं और किसी का दिया हुआ पहनता भी नहीं। यह धोती भी मेरी कमाई की पहनता हूँ। यहाँ से मुंबई जाने का प्लेन का किराया मेरे घर के पैसों से! फिर पैसों की ज़रूरत ही कहाँ रही? मैं तो एक पैसा लोगों से पास से लूँ, तो मेरे शब्द लोगों को स्वीकार ही कैसे होंगे फिर! क्योंकि उसके घर की जूठन मैंने खाई। हमें कुछ नहीं चाहिए। जिसे भीख ही नहीं किसी प्रकार की, उसे भगवान भी क्या देने वाले थे?

एक आदमी मुझे धोती देने आया, दूसरा फलाँ देने आया, मेरी इच्छा होती तो और बात थी, परंतु मेरे मन में किसी प्रकार की इच्छा ही नहीं! मुझे तो फटा हुआ हो तो भी चलेगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि जितना शुद्ध रखोगे उतना इस जगत् को लाभदायक हो जाएगा!

खुद की स्वच्छता अर्थात्...

इस दुनिया में जितनी स्वच्छता आपकी, उतनी दुनिया आपकी! आप मालिक हैं इस दुनिया के! मैं इस देह का मालिक छब्बीस वर्ष से नहीं हुआ, इसलिए हमारी स्वच्छता संपूर्ण होती है! इसलिए स्वच्छ हो जाओ, स्वच्छ!

प्रश्नकर्ता : 'स्वच्छता' का खुलासा कीजिए।

दादाश्री : स्वच्छता अर्थात् इस दुनिया की किसी भी चीज़ की जिसे ज़रूरत नहीं हो, भिखारीपन ही नहीं हो!

गुरुता ही पसंद है जीव को

इसलिए यहाँ पर अलग ही प्रकार का है, यह दुकान नहीं है। फिर भी लोग तो इसे दुकान ही कहेंगे। क्योंकि 'और सभी ने दुकान खोली वैसी दुकान आपने भी किसलिए खोली? आपको क्या गर्ज़ है?' मुझे भी वैसी गर्ज़ तो है न, कि मैंने जो सुख पाया वह आप भी पाओ! क्योंकि लोग कैसे भट्ठी में भुन रहे हैं, शक्करकंद भट्ठी में भुनें, वैसे भुने जा रहे हैं लोग! या फिर मछलियाँ पानी से बाहर छटपटाएँ, वैसे छटपटा रहे हैं। इसलिए हमें घूमना पड़ता है। बहुत लोगों ने शांति का मार्ग प्राप्त कर लिया है।

प्रश्नकर्ता : मतलब कि यह गर्ज़ नहीं है, परंतु इन सभी जीवों का कल्याण हो, ऐसी भावना होती है न!

दादाश्री : कल्याण हो तो अच्छा, वैसी भावना होती है। इस वर्ल्ड में तीर्थंकरों और ज्ञानियों के सिवाय किसी ने जगत् कल्याण की भावना नहीं की है। खुद के ही पेट का ठिकाना नहीं पड़ा हो, वहाँ पर लोगों का कहाँ विचार करें? सभी लोगों ने भावना क्या की है? ऊँचा पद ढूँढते रहे हैं! साधु हो तो 'मुझे आचार्य कब बनाएँगे?' और आचार्य हो तो 'मुझे फलाँ कब बनाएँगे?' वही भावना सब को होती है। जबकि इस ओर, लोगों को कालाबाज़ार करने की भावना है! कलेक्टर हो तो 'मुझे कमिश्नर कब बनाएँगे?' वही भावना होती है! जगत् कल्याण की तो किसी को पड़ी नहीं है। यानी कि रिलेटिव में जगत् गुरुता में जाता है। गुरुत्तम तो हो नहीं सकते।

प्रश्नकर्ता : रिलेटिव में गुरुता अर्थात् क्या?

दादाश्री : गुरुता अर्थात् बढ़ना ही चाहते हैं, ऊँचे चढ़ना चाहते हैं। वे ऐसा समझते हैं कि गुरुत्तम हो जाऊँगा तो ऊपर उठ जाऊँगा,

उन्हें रिलेटिव में ही गुरुता चाहिए। उसका तो कब ठिकाना पड़ेगा? क्योंकि रिलेटिव विनाशी है। इसलिए गुरुता इकट्ठी की हुई होती है, इसलिए वह बड़ा बनने को फिरता है, परंतु कब नीचे गिर जाएगा, वह कैसे कह सकते हैं? रिलेटिव में लघुता चाहिए। रिलेटिव में ये सभी गुरु बनने को फिरते हैं, उससे कुछ दिन नहीं बदलते।

गुरुता ही पछाड़ती है अंत में

बाकी, जो लघुत्तम नहीं हुआ है, वह गुरुत्तम होने के लिए पात्र नहीं है। जबकि आज एक भी गुरु ऐसे नहीं है कि जिन्होंने लघुत्तम बनने का प्रयत्न किया हो! सभी गुरुता की ओर गए हैं। 'किस तरह से मैं ऊँचे चढ़ूँ!' उसमें उन किसी का दोष नहीं है। यह काल बाधक है। बुद्धि टेढ़ी चलती है। इन सभी गुरुओं का काम क्या होता है? किस तरह बड़ा हो जाऊँ? गुरुपन बढ़ाना, वह उनका व्यापार होता है। लघु की तरफ नहीं जाते। व्यवहार में गुरुता बढ़ती गई, नाम हुआ कि, 'भाई, इनके एक सौ आठ शिष्य हैं।' यानी निश्चय में उतना लघु हो गया। लघुत्तम होता जाता है। व्यवहार में गुरु होने लगे, वह गिरने का संकेत है।

घर पर एक पत्नी थी और दो बच्चे थे, वे तीन घंट छोड़कर यहाँ पर साधु बने! इन तीन घंटों से ऊब गए और वहाँ फिर एक सौ आठ घंट लटकाए। परंतु इन तीन को छोड़कर एक सौ आठ घंट किसलिए लटकाए? इससे वे स्त्री और बच्चे क्या बुरे थे? वे घंट छोड़े और ये नये घंट लटकाए! वे पीतल के घंट थे और ये सोने के घंट! फिर ये घंट बजते रहते हैं! किसलिए यह सारा तूफ़ान खड़ा किया है?

आपने शिष्य बनाए या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दादा ने किसी को शिष्य बनाया है?

दादाश्री : मैं पूरी दुनिया का शिष्य बनकर बैठा हूँ। शिष्यों का भी शिष्य मैं हूँ। मुझे शिष्यों का क्या करना है? इन सब को वापस कहाँ चिपकाऊँ? यों तो पचास हज़ार लोग मेरे पीछे घूमते हैं। लेकिन मैं इन सभी का शिष्य हूँ!

'आप' गुरु हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : तो आप गुरु नहीं हैं?

दादाश्री : नहीं, मैं तो पूरे जगत् का शिष्य हूँ। मैं किसलिए गुरु बनूँ?

प्रश्नकर्ता : मान लिजिए कि आज से आपको सच्चे गुरु मानें और समर्पण कर दें तो?

दादाश्री : परंतु मैं तो गुरु बनने के लिए फालतू नहीं बैठा हूँ। मैं तो आपको यहाँ पर जो ज्ञान देता हूँ, उस ज्ञान में ही रहकर आप अपने मोक्ष में चले जाओ न, यहाँ से। गुरु बनाने के लिए कहाँ बैठे रहोगे? मुझे गुरु मानने की ज़रूरत नहीं है। मैं गुरुपद स्थापन नहीं करने दूँगा, आपको दूसरा सब अंत तक का बता दूँगा। फिर हर्ज है?

मैं किसी का गुरु नहीं बनता। मुझे गुरु बनकर क्या करना है? मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ। ज्ञानी पुरुष अर्थात् क्या? ओब्ज़र्वेटरी कहलाते हैं! जो जानना हो वह जाना जा सकता है, वहाँ पर!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी, गुरु नहीं हो सकते?

दादाश्री : ज्ञानी किसी के गुरु नहीं बनते न! हम तो लघुत्तम हैं! मैं किस तरह गुरु बनूँ? क्योंकि मुझमें बुद्धि बिल्कुल है ही नहीं और गुरु बनना, उसके लिए तो बुद्धि चाहिए। गुरु में बुद्धि चाहिए या नहीं चाहिए? हमने तो अपनी पुस्तक में लिखा है कि हम अबुध हैं। इस जगत् में किसी ने खुद अपने आपको अबुध नहीं लिखा है। यह हम अकेले ही हैं, जिन्होंने पहली बार लिखा है कि हम अबुध हैं। वास्तव में अबुध होकर बैठे हैं! हममें थोड़ी-सी भी बुद्धि नहीं मिलेगी। बुद्धि के बिना चलती है न, हमारी गाड़ी!

इस तरह से ये सभी गुरु

कुछ न्याय लगता है आपको? 'मैं इन सब का शिष्य हूँ', ऐसा कहता हूँ, उसमें कुछ न्याय लगता है?

प्रश्नकर्ता : ये सब किस तरह आपके गुरु हैं?

दादाश्री : ये सभी मेरे गुरु हैं! क्योंकि उनके पास जो कुछ प्राप्ति होती है, वह मैं तुरंत स्वीकार लेता हूँ। परंतु वे समझते हैं कि हम दादा के पास से ले रहे हैं। इन पचास हज़ार लोगों को ही नहीं, परंतु पूरे वर्ल्ड के जीव मात्र को मैं गुरु की तरह मानता हूँ, पूरी दुनिया को मैं गुरु की तरह मानता हूँ। क्योंकि जहाँ किसी भी प्रकार का सत्य होगा, एक कुत्ता जा रहा हो वहाँ कुत्ते का सत्य भी स्वीकार कर लेता हूँ। जिसमें अपने से अधिक जो विशेषता हो, उसे स्वीकार कर लेता हूँ! आपके समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : मतलब कि जहाँ से कुछ भी प्राप्ति हो, वे अपने गुरु, ऐसा?

दादाश्री : हाँ, उस तरह सभी मेरे गुरु! इसलिए मैंने तो पूरे जगत् के जीव मात्र को गुरु बनाया है। गुरु तो बनाने ही पड़ेंगे न? क्योंकि ज्ञान सभी लोगों के पास है। प्रभु कहीं खुद यहाँ पर नहीं आते। वे ऐसे फालतू नहीं है कि आपके लिए यहाँ पर चक्कर लगाएँ।

'इसके' सिवाय नहीं दूसरा कोई स्वरूप

प्रश्नकर्ता : इसमें आप खुद को किस कोटि में मानते हैं?

दादाश्री : मैं अपने आपको पूरे जगत् का शिष्य मानता हूँ और लघुत्तम स्वरूप हूँ। इसके सिवाय मेरा दूसरा कोई स्वरूप नहीं है। 'दादा भगवान', वे भगवान हैं, अंदर प्रकट हुए हैं, वे!

दिशा बदलने की ही ज़रूरत

प्रश्नकर्ता : वर्तमान में भारत में आपकी कक्षा की दूसरी विभूतियाँ हैं क्या?

दादाश्री : मुझे किस तरह पता चले? वह तो आप जाँच करते हो, तो आपको पता चलेगा। मैं जाँच करने नहीं गया।

प्रश्नकर्ता : आप शिखर (चोटी) पर हैं, इसलिए दिखता है न?

दादाश्री : परंतु मैं जिस शिखर पर हूँ, उससे बड़ा अगर कोई शिखर हो तो मुझे कैसे पता चले? शिखर पर गए हुए हर एक ने क्या कहा है, कि मैं ही अंतिम शिखर पर हूँ। परंतु मैं ऐसा नहीं कहता।

प्रश्नकर्ता : जो आप से छोटे शिखर हों, वे सब दिखते हैं न?

दादाश्री : छोटे दिखते हैं, लेकिन वे छोटे माने नहीं जाते। वस्तु तो एक ही है न! क्योंकि मैं जिस शिखर पर हूँ न, वहाँ लघुत्तम बनकर बैठा हुआ हूँ, व्यवहार में! जिसे व्यवहार कहते हैं न, जहाँ लोग गुरुत्तम होने गए, वहाँ मैं लघुत्तम हो गया हूँ। जबकि लोगों को, गुरुत्तम होने गए, उसका बदला क्या मिला? लघु बने। मेरा व्यवहार में लघुत्तम हुआ, इसलिए निश्चय में गुरुत्तम हो गया!

इस वर्ल्ड में मुझसे कोई भी लघु नहीं है, वैसा लघुत्तम पुरुष हूँ। यदि छोटा बन जाए तब तो वह बहुत बड़ा, भगवान हो जाए। फिर भी भगवान होना मुझे बोझ जैसा लगता है, बल्कि शर्म आती है। हमें वह पद नहीं चाहिए। किसलिए वह पद चाहिए? और ऐसे काल में वह पद प्राप्त करना चाहिए? ऐसे काल में कैसा भी व्यक्ति भगवान पद लेकर बैठ गया है। इसलिए दुरुपयोग होता है बल्कि। हमें उस पद का क्या करना है? मैं ज्ञानी हूँ, वह पद कम है? पूरे जगत् के शिष्य के रूप में ज्ञानी हूँ! लघुत्तम पुरुष हूँ! फिर इससे बड़ा पद कौन-सा? लघुत्तम पद से कभी भी गिर नहीं सकते, उतना बड़ा पद है!

और जगत् का शिष्य बनेगा न, वह गुरुत्तम बनेगा! रास्ता ही यह है, हाँ! यह वाक्य दिशा बदलने को कहता है। आप जो गुरुतम अहंकार करते फिरते हो, मतलब क्या कि 'मैं इस तरह आगे बढ़ूँ और भविष्य में बड़ा कैसे बनूँ!' वैसा जो आप प्रयत्न कर रहे हो, वह गुरुत्तम अहंकार कहलाता है। उसके बदले, 'मैं किस तरह छोटा बनूँ' ऐसे लघुत्तम अहंकार में जाओगे तो जबरदस्त ज्ञान प्रकट होगा! गुरुत्तम अहंकार हमेशा ज्ञान पर आवरण लाता है और लघुत्तम अहंकार ज्ञान प्रकट करता है।

इसलिए किसी ने कहा कि, 'साहब, आप तो बहुत बड़े मनुष्य

हैं!' मैंने कहा, 'भाई, तू मुझे पहचानता नहीं, मेरा बड़प्पन नहीं पहचानता। तू गाली देगा तब पता चलेगा कि मेरा बड़प्पन है या नहीं!' गालियाँ दें, तब पुलिस वाले का स्वभाव दिख जाता है या नहीं दिख जाता? वहाँ 'तू क्या समझता है?' ऐसा कहे तो समझना कि आया पुलिस वाला! पुलिस वाले का स्वभाव मुझमें दिखे तो समझना कि मुझमें बड़प्पन है। पुलिस वाले का स्वभाव नहीं दिखे तो 'मैं लघुत्तम हूँ' यह विश्वास हो गया न!

इसलिए हमें कोई गाली दे तो हम कहते हैं कि भाई देख, तेरी गाली है, वह हमें स्पर्श नहीं करती, उससे भी हम छोटे हैं। इसलिए तू ऐसा कुछ ढूँढ निकाल, हमें स्पर्श करे वैसी गाली बोल। तू हमें 'गधा है' कहेगा, तो उससे तो बहुत छोटे हैं हम। तो तेरा मुँह दुःख जाएगा। हमें गाली छुए वैसा हमारा स्थान ढूँढ निकाल। हमारा स्थान लघुत्तम है।

जगत् के शिष्य को ही जगत् स्वीकारेगा

यानी 'ये' तो कौन हैं? लघुत्तम पुरुष! लघुत्तम पुरुष के दर्शन कहाँ से मिलें? ऐसे दर्शन ही नहीं होते न! वर्ल्ड में एक आदमी ढूँढ लाओ कि जो लघुत्तम हो और ये पचास हज़ार लोग होंगे, परंतु इन सभी के शिष्य हैं हम। आपको समझ में आया न? मैं खुद शिष्य बनाता ही नहीं हूँ। इन्हें मैंने शिष्य नहीं बनाया।

प्रश्नकर्ता : तो आपके बाद क्या होगा फिर? कोई शिष्य नहीं होगा तो फिर बाद में क्या होगा?

दादाश्री : कोई ज़रूरत नहीं है न! हमारा एक भी शिष्य नहीं है। लेकिन रोने वाले बहुत हैं। कम से कम चालीस-पचास हज़ार रोने वाले लोग हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपके बाद कौन?

दादाश्री : वह तो 'समय' उस घड़ी बताएगा कि बाद में कौन है, वह! मैं तो कुछ जानता नहीं हूँ और ऐसा सोचने के लिए फ़ुरसत भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि मेरे पीछे चालीस-पचास हज़ार रोने वाले होंगे, परंतु शिष्य एक भी नहीं। आप क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : मेरा कोई शिष्य नहीं है। यह कोई गद्दी नहीं है। गद्दी हो तो वारिस होगा न? यह गद्दी हो तो लोग वारिस होने आएँगे न! यहाँ तो जिसका चले उसका ही चलेगा। जो सभीका, पूरे जगत् का शिष्य बनेगा, उसका काम होगा! यहाँ तो लोग जिसे 'एक्सेप्ट' करेंगे, उसका चलेगा!

ऐसा यह अक्रम विज्ञान

यह गुरु का मार्ग नहीं है! यह कोई धर्म नहीं है या कोई संप्रदाय नहीं है। मैं तो किसी का भी गुरु नहीं बना, और न ही बनने वाला हूँ। लक्षण ही मेरे गुरु बनने के नहीं हैं। जिस पद में मैं बैठा हूँ, उस पद में आपको बैठा देता हूँ। गुरुपद-शिष्यपद मैंने रखा ही नहीं है। नहीं तो और सब जगह तो लगाम खुद के पास रखते हैं। जगत् का नियम कैसा है? लगाम छोड़ नहीं देते। परंतु यहाँ तो वैसा नहीं है। यहाँ तो मैं जिस पद में बैठा हूँ, उस पद में आपको बैठाता हूँ। हम लोगों में जुदाई नहीं है। आपमें और मुझमें कोई जुदाई नहीं है। आपको ज़रा जुदाई लगेगी, मुझे जुदाई नहीं लगती। क्योंकि आपमें मैं ही बैठा हुआ हूँ, उनमें भी मैं बैठा हुआ हूँ, फिर मुझे जुदाई कहाँ रही फिर?

और यहाँ तो गुरु पूर्णिमा होती ही नहीं, वास्तव में! यह तो गुरु पूर्णिमा मनाते हैं उतना ही है, एक दर्शन करने के निमित्त से! बाकी, यहाँ गुरु पूर्णिमा नहीं होती। यहाँ 'गुरु' ही नहीं हैं और 'पूर्णिमा' भी नहीं है! यह तो लघुत्तम पद है! यहाँ तो आपका ही स्वरुप है यह सब, यह अभेद स्वरूप है!

हम लोग जुदा हैं ही नहीं न! गुरु बने तो आप और मैं, शिष्य और गुरु दो भेद पड़े। परंतु यहाँ गुरु-शिष्य कहलाता ही नहीं न! यहाँ गुरु भी नहीं और शिष्य भी नहीं। यहाँ पर गुरु-शिष्य का रिवाज ही नहीं। क्योंकि यह तो अक्रम विज्ञान है!!!

– **जय सच्चिदानंद**

परम गुरु किसे कहा जाए?

एक दिन दादाश्री नीरू से कहते हैं, 'नीरू बहन, आप एक शिष्य रखिए न!' नीरू ने कहा, 'दादा, आप आज ऐसा क्यों कह रहे हैं? आप तो हमेशा हम सब से कहते आए हैं कि मैं पूरे जगत् के जीव मात्र का शिष्य बना, तब मुझे यह ज्ञान प्रकट हुआ है! तो आज मुझे आप गुरु बनने को क्यों कह रहे हैं?' तब दादाश्री ने हँसते-हँसते कहा, 'लेकिन एक शिष्य रखो न! एक शिष्य रखने में आपको क्या हर्ज है?' तब नीरू ने कहा, 'नहीं दादा, मुझे आपके चरणों में, सेवा में रहने दीजिए न! इस शिष्य को मैं कहाँ झेलूँ? मुझे वह पुसाए, ऐसा है ही नहीं।' तब दादाश्री ने कहा, 'लेकिन मेरी बात तो समझो!' 'दादा, उसमें क्या समझना है? गुरु तो मुझसे बना जाता होगा?' तब फिर से दादाश्री बोले, 'लेकिन मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह तो समझो। ऐसा कीजिए न, इन नीरू बहन को ही अपना शिष्य बना दीजिए न!' ओहोहो! दादा! आपने तो कमाल कर दिया! 'सहजात्म स्वरूप परम् गुरु' का यथार्थ अर्थ अनुभव किया! 'मैं' गुरुपद में और 'नीरू' शिष्य! फिर दादाश्री ने विशेष स्पष्टीकरण किया, 'देखिए नीरू बहन, एक गुरु अपने शिष्य का कितना अधिक ध्यान रखते हैं? किस तरह मेरा शिष्य आगे बढ़े? उसका सतत ध्यान रखते हैं। ऐसे ही आपको इन नीरू बहन का ध्यान रखना है। आप तो 'शुद्धात्मा' बन गए, लेकिन अब इन नीरू बहन को ऊँचे नहीं लाना है?' उस दिन से दादाश्री ने मेरा और नीरू का गुरु-शिष्य का व्यवहार शुरू करवा दिया। तब ज्ञानी की गहनता का यथार्थ ख्याल आया कि गुरु-शिष्य के लिए ज्ञानी की दृष्टि किस हद तक होती है! कहाँ लौकिक गुरु बनाने की बात और कहाँ खुद के ही आत्मा को गुरुपद पर स्थापना करने की बात! और सच्चे गुरु, अरे उन्हें ही परम् गुरु कहा जाता है! दूसरे सब बाहरवाले गुरु तो घंटे, दो घंटे उपदेश देकर चले जाते हैं। वे उनके घर पर और हम अपने घर! फिर हम क्या उनका सुनें, ऐसे हैं? उनके कहे अनुसार चलें, वैसे हैं? यह तो खुद का ही प्रकट हुआ आत्मा, खुद का परम् गुरु। जो चौबीसों घंटे हाज़िर! जो हाज़िर है, वह मोक्षमार्ग से ज़रा भी विचलित नहीं होने देते, ऐसी कड़ी निगरानी रखता है! ऐसे परम् गुरु की स्थापना की जाए, तब ही मोक्ष होता है, तब तक भटकना तो रहा ही! गुरु-शिष्य की चरम भेदरेखा इसीको कहते हैं!!!

डॉ नीरू बहन अमीन

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 (पू)
53. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
55. आप्तवाणी - 14 (भाग-1,भाग-2)
57. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : 9328661166, 9328661177
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	9810098564	**बेंगलूर**	9590979099
कोलकता	9830080820	**हैदराबाद**	9885058771
चेन्नई	7200740000	**पूणे**	7218473468
जयपुर	8890357990	**जलंधर**	9814063043
भोपाल	6354602399	**चंडीगढ़**	9780732237
इन्दौर	6354602400	**कानपुर**	9452525981
रायपुर	9329644433	**सांगली**	9423870798
पटना	7352723132	**भुवनेश्वर**	8763073111
अमरावती	9422915064	**वाराणसी**	9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 722 722 063

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 421127947

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 81129229

www.dadabhagwan.org



गुरु और ज्ञानी में इतना अंतर

इन सभी गुरुओं का काम क्या होता है? किस तरह बड़ा बन जाऊँ, गुरुपन बढ़ाऊँ? लघु की तरफ नहीं जाते। व्यवहार में गुरुता बढ़ती गई, नाम हुआ कि, 'भाई, इनके एक सौ आठ शिष्य हैं।' यानी निश्चय में उतना लघु हो गया। लघुत्तम होता जाता है। जब व्यवहार में गुरु होने लगे, तो वह गिरने का संकेत है।

मैं अपने आपको पूरे जगत् का शिष्य मानता हूँ और लघुतम स्वरूप हूँ। इसके सिवा मेरा दूसरा कोई स्वरूप नहीं है। 'दादा भगवान', वे भगवान हैं, अंदर प्रकट हुए हैं, वे!

- दादाश्री



dadabhagwan.org



Printed in India

Price ₹50